इकाई 18

शूद्रक– व्यक्तिनिर्धारण, काल, मृच्छकटिकम् की कथावस्तु एवं समीक्षा

इकाई की रूपरेखा –

18.0 उद्देश्य

एम.ए. संस्कृत पूर्वार्द्ध के द्वितीय प्रश्न पत्र के पाठ्यक्रम में शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' रखा गया हैं। इस इकाई के अन्तर्गत शूद्रक का परिचय दिया गया है। उसका काल निर्धारण करने का प्रयास किया गया है। साथ ही शूद्रक द्वारा विरचित प्रसिद्ध कृति मृच्छकटिकम् की कथावस्तु को प्रस्तुत कर उसकी विस्तृत समीक्षा की गई है। इस इकाई को पढने के बाद आप

1) शूद्रक के विषय में विस्तार से जान सकेंगे।
2) उसके व्यक्तित्त्व के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3) उसके स्थितिकाल के विषय में जान सकेंगे।
4) उसके द्वारा विरचित –मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण को कथावस्तु के विस्तार से जान सकेंगे।
5) नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु के गुण व दोषों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना –

संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि जो रचना या कृति जितनी प्रसिद्ध हुई है उतनी ही नहीं अपितु उससे अधिक समस्यायें व संशय उसके कर्तृत्व के विषय में हमें यहाँ देखने को मिलते हैं। 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' को संस्कृत–नाट्य

साहित्य में न केवल भारतीय विद्वानों व मनीषियों द्वारा श्रेष्ठ माना गया है, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भो नाटक की भ्रि–भ्रि प्रशंसा की है। परन्तु नाटक के रचयिता के विषय में नाम के अतिरिक्त कुछ भो ज्ञात नहीं है। परन्तु 'मृच्छकटिकम्' के कतृत्व के विषय में जब विचार करते हैं तब उसकी स्थिति तो ओर भो संशयात्मक प्रतीत होती है, क्योंकि वहाँ पर तो लेखक के नाम को लेकर भो विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस प्रकरण की अन्तर्याजना जितनी मनोरंजक एवं पिटी – पिटाई लकीर से पृथक् है उतना ही जटिल एवं विवादग्रस्त उसके रचयिता का प्रश्न रहा है। एक तरह शूद्रक को 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता माना है, तो दूसरी ओर इस स्थापना का प्रवीण युक्तियों से प्रत्याख्यान भो किया गया है, इसी तरह एक ओर उसे काल्पनिक व्यक्ति माना गया है तो दूसरी ओर उसे ऐतिहासिक नरेश भो सिद्ध किया गया है।

इन सबके मूल में कारण आलोच्य प्रकरण की प्रस्तावना है। प्रस्तावना में इसको प्रकरण बतलाया गया है तथा रचयिता का नाम शूद्रक कहा गया है। प्रस्तावना में शूद्रक का कुछ परिचय भो है जो इस प्रकार है –

''गजराज के समान गतिवाले, चकोर के समान नेत्र वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले, सुन्दर शरीर वाले, द्विजों में मुख्यतम, अगाध शक्ति वाले शूद्रक नाम के विख्यात कवि हुये। उन्होंने ऋग्वेद, सामवेद, गणित, ललितकलाओं तथा गज विद्या को शिव की कृपा से सीखकर तिमिर रहित नेत्रों को प्राप्त कर पुत्र को राजा के रूप में देखकर महान् उद्योग से अश्वमेघ यज्ञ कर और दस दिन सहित सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अग्नि में प्रवेश किया।''

18.2 शुद्रक – व्यक्ति – निर्धारण

प्रकरण की उक्त प्रस्तावना ने कई समस्याओं को जन्म दिया है। इन समस्याओं में सर्वप्रथम यह है कि प्रस्तावना में जिस 'शूद्रक' का उल्लेख है, वह कौन है ? ऐतिहासिक व्यक्ति है अथवा कोई काल्पनिक पुरूष है ? इस विषय में प्रायः दोनों ही प्रकार के मत हमें देखने को मिलते हैं। एक ओर डॉ कीथ, तैलंग, करमरकर आदि विद्वान् इसे काल्पनिक पुरूष मानते हैं तो दूसरी ओर डॉ भागव, डॉ भाट, डॉ सालेटोर, चन्द्रबली पाण्डे आदि विद्वान् उसे ऐतिहासिक राजा के रूप में मानते हैं।

डॉ. कीथ का मत है कि शूद्रक स्पष्टतया काल्पनिक पुरुष है क्योंकि प्रस्तावना में यह कहा गया है कि उसने अग्नि में प्रवेश किया और इस बात पर कोई भो विश्वास नहीं कर सकता कि उसे अपनी मृत्यु का इतना ठीक ज्ञान पहले ही हो गया हो। कीथ के उक्त कथन से स्पष्ट है कि वह शूद्रक को वास्तविक पुरूष नहीं मानता। इसी सन्दभ में उन्होंने यह भो शंका उठाई है कि ''शूद्रक नाम किसी राजा के लिए, किसी ऐसे राजा के लिए जो द्विजों की श्रेणी को सुशोभित कर सके, कछ विचित्र सा ध्वनित होता है, यदि उस राजा ने शूद्रक की उपाधि उपनाम के रूप में भो ग्रहण की तो भो कुतूहल बना रह जाता है उसने अपने सम्पूर्ण पाण्डित्य के बावजूद, ऐसी संज्ञा क्यों अपनाई जो किसी भो प्रकार हीनता की व्यंजना से गर्भित हो ?''

परन्तु डॉ. कीथ की उक्त धारणा उचित प्रतीत नहीं होती। किसी भो सिद्धान्त को प्रतिपादित करने से पूर्व उसकी पुष्टि में जो आधार बनाये जायें उनको सम्यक् प्रकारेण देख लेना एक आलोचक के लिए आवश्यक है। 'शूद्रक काल्पनिक है क्योंकि उसका नाम अटपटा है। कोई ऐसा प्रामाणिक व अकाट्य तथ्य नहीं है जिसके आधार पर कोथ की उक्त धारणा को सत्य माना जाये। किसी भो व्यक्ति का मूल्यांकन उसके नाम व उसकी उपाधि से किया जाय, यह कहाँ तक उस व्यक्ति के साथ न्याय की बात होगी, यदि वह राजा काल्पनिक ही होता तो नाम शूद्रक क्यों रखा जाता? काल्पनिक व्यक्ति का नाम तो अच्छी से अच्छी कल्पना करके सुन्दर नाम रखना चाहिए। इस दृष्टि से प्रस्तुत नाम तो काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक का अधिक समर्थक हैं।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान में जितनी भो खोजें शूद्रक के सन्दभ में की गई हैं उनका निष्कष यही निकलता है कि शूद्रक एक ऐतिहासिक राजा था। यहाँ पर हम उन सभो मतों को प्रस्तुत करेंगे जो इस सन्दभ में समय समय पर विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। जहाँ तक ऐतिहासिकता का सम्बन्ध है, अधिकांश ने उसे ऐतिहासिक राजा माना है परन्तु उसे इतिहास में पकडने के प्रयास में विभिन्न कल्पनायें अवश्य की गई हैं –

1. बाण भट्ट द्वारा विरचित 'हर्षचरित' में शूद्रक का उल्लेख प्राप्त होता है। 'हर्षचरित' एक ऐतिहासिक काव्य है तथा विद्वानों द्वारा वह सर्वथा मान्य भो है। वहाँ हमें शूद्रक के विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है – 'चकोर नामक देश के राजा चन्द्रकेतु ने किसी पूर्व अवसर पर द्वारपाल के द्वारा राजा शूद्रक का अपमान कराया था जिसके प्रतिशोध में शूद्रक के दूत ने छल द्वारा चन्द्रकेतु के प्राण हर लिये।'' यह उल्लेख उस प्रसंग में उपलब्ध है जबकि सेनापति स्कन्दगुप्त ने महाराज हर्षवर्धन के समीप राजवर्धन की हत्या का प्रतिशोध लेने के निमित्त प्रस्तावित आक्रमण के विषय में संभाव्य संकटों का वर्णन करते हुयें पूर्ववर्ती नरेशों के दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं। हर्षचरित का विषय ऐतिहासिक है और पुराने राजाओं से सम्बन्धित दृष्टान्तों के प्रकरण में जिस ढंग से शूद्रक का उल्लेख हुआ है, उससे यह अनायास मान लेने की प्रेरणा होती है कि 'शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।'

2. दण्डी की रचना 'अवन्ती–सुन्दरी कथा' में शूद्रक का उल्लेख मिलता है। वहाँ जो ... इतिवृत्त दिया गया है उसमें उसे उज्जयिनी का एक ब्राह्मण राजा और महान् कवि बतलाया गया है। साथ ही यह भो कहा गया है कि शूद्रक ने आन्ध्रवंश के स्वाति नामक राजा को पराजित किया था। इतिहास के अनुसार 'स्वाति' ने 56 ईस्वी पूर्व तक राज्य किया। महाराजा विक्रमादित्य का भो यही समय है अतः कुछ विद्वानों ने इस साम्य के आधार पर विक्रमादित्य और शूद्रक को अभिन्न सिद्ध करने का प्रयास किया है।

3. कल्हण द्वारा विरचित 'राजतरंगिणी' एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी विभिन्न तरंगों में यहाँ पर हुये प्रसिद्ध राजाओं के उल्लेख देखने को मिलते हैं। शूद्रक का उल्लेख भो एक दो बार इस रचना में किया गया है। कल्हण द्वारा किये गये इन उल्लेखों से शूद्रक का ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व प्रतिभासित होता है। डॉ. तिवारी के शब्दों में एक बार वह परमवीर राजा तथा दूसरी बार राजभक्त नीतिज्ञ बताया गया है।

4. वामन के एक टीकाकार लिखते हैं कि शूद्रक दक्षिणापथ का सम्राट् था।

5. सोमदेव के 'कथासरित्सागर' में किसी शूद्रक नामक भारतीय राजा का उल्लेख हुआ है।

6. राजशेखर विरचित 'काव्यमीमांसा' में भो शूद्रक का उल्लेख हमें देखने को मिलता है। इस ग्रन्थ में राजशेखर ने राजा के क्या कतव्य होते हैं – इसका विस्तार से विवेचन किया है। अपने उक्त विवेचन में आपने लिखा है – ''सभा मण्डप में सूखपूर्वक आसीन राजा काव्य गोष्ठी का प्रारम्भ कराये और वासुदेव, सातवाहन शूद्रक, साहसांक इत्यादि पूर्वकालीन नृपति–गण जिस प्रकार अपनी सभाओं में गुणीजनों को दान–मान से सम्मानित करते थे, उसी प्रकार वह भो कवियों को पुरस्कारादि से सत्कृत करे।''

   काव्यमीमांसा के उल्लेख से शूद्रक कल्पना लोक का प्राणी न होकर वास्तविक संसार का प्रसिद्ध व्यक्ति, वह भो एक राजा के रूप में प्रतीत होता है।

7. प्रो. स्टेनकोनो के मतानुसार ' मृच्छकटिकम्' का रचयिता शूद्रक आभोर राजा शिवदत्त से अभिन्न है।

8. स्कन्दपुराण के कुमारिका खण्ड में भो हमें शूद्रक सम्बन्धी उल्लेख देखने को मिलता है। उस उल्लेख में कहा गया है कि शूद्रक नाम का एक महान् राजा कलि सम्वत् 3290 वें वर्ष में राज्य करेगा। नवीन गणना करके विद्वानों ने उक्त वर्ष ईस्वी सम्वत् का 190 वाँ वर्ष बताया है। कनल विल्फोर्ड ने सर्वप्रथम स्कन्दपुराण के उक्त उल्लेख के आधार पर आन्ध्रवंश के प्रवर्तक सिमुक से शूद्रक की अभिन्नता बतलाई।

9. भागवत् पुराण में प्रथम आन्ध्रशासक को 'वृषल' अथवा शूद्र' कहा गया है। अतः यह सम्भावना हो सकती है कि वह 'शूद्रक' पुकारा जाता हो।

10. 'सिमुक' के विभिन्न ग्रन्थों में क्रमशः अन्य नाम सिन्धुक, शिशुक, सिसुक तथा सिमुक एवं शिप्रक प्राप्त होते हैं। यहाँ इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि प्रारम्भ में यह सिमुक ही 'शूद्रक' रहा हो।

11. कनल विल्फोर्ड के अतिरिक्त विल्सन ने भो स्कन्दपुराण के शूद्रक को आन्ध्रवंश के 'सिमुक' से अभिन्न ठहराते हुये उसे 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता भो माना है। विल्फार्ड एवं विल्सन के अतिरिक्त एम.आर.काले ने भो इस मत का समर्थन किया है।

12. पुराणों के अध्ययन के आधार पर ही डॉ. पुरूषोत्तम लाल भार्गव ने भो सात वाहन वंश के संस्थापक 'शिशुक' को 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता माना है। इस राजा का नाम नानाघाट अभिलेख के अनुसार सिमुक था परन्तु पुराणों में इसके नाम के शिशुक, सिन्धुक, शिप्रक और शूद्रक रूप मिलते हैं। पुराणों के अनुसार इसके नाम के जो विविध रूप ऊपर दिये गये हैं उनमें अन्तिम से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्य में शूद्रक नाम के जिस प्रसिद्ध राजा की चर्चा मिलती है, वह यही था। केवल नाम ही नहीं शूद्रक के विषय में जो अन्य बातें संस्कृत साहित्य में कही गई हैं, वे भो इस राजा पर लागू होती हैं। उदाहरण के लिये – कादम्बरी के अनुसार शूद्रक की राजधानी विदिशा थी। इस राजा का भो विदिशा पर अधिकार था और सम्भव है कि वह इस नगर में अपना पूरा नहीं कुछ समय व्यतीत करता हो। 'मृच्छकटिकम्' में शूद्रक ' द्विजमुख्यतमः' अर्थात् ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह राजा भो ब्राह्मण था । उक्त सभो विवरणोपरान्त डॉ. भार्गव का कथन है कि 'बहुत सम्भव है कि इस राजा की कीर्ति ने ही शूद्रक की कथाओं को जन्म दिया हो।'

13. शूद्रक की ऐतिहासिक पहचान का व्यवस्थित एवं विस्तृत प्रयास डॉ. सालेटोर ने भो किया है। आपके मत का आधार वामन विरचित 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' है जिसका कि समय ईसा की आठवी शती है । वामन द्वारा विरचित उक्त ग्रथ में 'मृच्छकटिकम्' के उदाहरण को देखकर डॉ. सालेटोर ने यह माना है कि वह शूद्रक वामन का समसामयिक नहीं तो पूर्ववर्ती अवश्य होगा। इस तथ्य से प्रेरणा ग्रहण कर बडे ही मनोयोग व परिश्रम के साथ प्रकरण की प्रस्तावना में प्राप्त कवि–परिचय के आधार पर शूद्रक को इतिहास में ढूढंने का प्रयास किया। इस प्रयास के फलस्वरूप दक्षिण के प्राचीन गंगाराजवंश के राजा शिवमार प्रथम से शूद्रक को अभिन्न ठहराया है। आपने 'मृच्छकटिकम्' को दो व्यक्तियों की रचना बतलाई है। इसमें पहला भाग गंगावंश के राजा शिवमार प्रथम द्वारा रचित है, तथा दूसरा भाग शूद्रक, शिवमार प्रथम के प्रपौत्र शिवमार द्वितीय (797–815 ई) द्वारा रचित हैं।

14. शूद्रक के सन्दभ में किये गये प्रयासों में अन्तिम प्रयास स्व. पं. चन्द्रबली पाण्डे द्वारा किया गया है। आपने आन्ध्रवंशीय वासिष्ठीपुत्र श्री पुलुमावि के रूप में शूद्रक की पहचान की है। आपकी स्थापना का आधार 'अवन्ति सुन्दरी कथासार' का वह श्लोक है जिसमें अश्मक देश निवासी इन्द्राणिगुप्त नामक ब्राह्मण को पण्डितों द्वारा शूद्रक कहा गया है। पाण्डे जी के अनुसार पुलुमावि ही इन्द्राणिगुप्त है, अतः पुलुमावि ही शूद्रक है। शूद्रक आपके शकों में पुलुमावि का उपनाम है आपके तर्क का मूलाधार पुलुमावि और इन्द्राणिगुप्त की अभिन्नता है। परन्तु इन दोनों की अभिन्नता को सिद्ध

करने में आपने अनुमान की श्रृंखला सी जोड दी है जिसमें आपका प्रयास यथार्थ को स्पर्श नहीं कर सका है।

परन्तु एक महत्त्वपूर्ण कथन अवश्य हमें आपकी पुस्तक में मिलता है, जिसके अनुसार ''शूद्रक को कल्पना लोक का प्राणी मानना अतीत को धोखा देना होगा, उसकी आँखों में धूल झोंकना होगा।'' आपका यह कथन मात्र इस बात का साक्षी है कि शूद्रक का व्यक्तित्त्व काल्पनिक न होकर ऐतिहासिक था।

15. डॉ. जीके भाट ने भो अपनी पुस्तक 'दी फिफश टू दी मृच्छकटिकम्' में विभिन्न मतों को संकलित कर उनका मूल्यांकन करते हुये अन्त में शूद्रक को एक ऐतिहासिक राजा के रूप में ही माना है।

उक्त मतों के अतिरिक्त अन्य भो जो इस सन्दभ में प्रयास किये गये हैं वे प्रायः सभो इस निष्कष पर पहुँचे हैं कि शूद्रक एक ऐतिहासिक राजा था। ऐसी स्थिति में आज कीथ व अन्य एक दो विद्वानों के काल्पनिक मतों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

उक्त सम्पूण मतों को व्यवस्थित करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि वह शूद्रक सम्भवतः सातवाहन वंश का संस्थापक सिमुक ही था। पुराणों में प्राप्त उसके विभिन्न नामों में सिमुक के साथ–साथ शूद्रक नाम भो हमें यही मानने को प्रेरित करता है।

इस प्रकार शूद्रक की ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाने पर द्वितीय प्रश्न जो उत्पन्न होता है कि वह यह कि संस्कृत साहित्य में प्राप्त 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण का रचयिता उक्त शूद्रक ही है या अन्य कोई व्यक्ति है ? इस विषय में विभिन्न मत दिखाई देते हैं :–

(क) सर्वप्रथम कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो प्रस्तावना में कुछ कहा है, उस पर विश्वास नहीं करते। वे शूद्रक को कल्पित पुरूष मानते हैं। उनके मतानुसार 'मृच्छकटिकम्' के कर्ता कोई अन्य कवि थे। इस मत के समर्थकों में कीथ, सिलवां लेवी, पिशैल, कान्तानाथ शास्त्री तैलंग, प्रो करमरकर आदि प्रमुख हैं।

परन्तु उक्त विद्वानों के द्वारा जो प्रमाण व तर्क दिये गये ह वे इतने सबल व अकाट्य नहीं हैं कि उन्हें सत्य माना जाये।

(ख) द्वितीय मत जिसको कि अधिकांश भारतीय विद्वानों का समर्थन प्राप्त है, शूद्रक को 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता मानने से समबन्धित है। इस मत के समर्थकों में डॉ. कुन्हन राजा, डॉ. रामजी उपाध्याय, डॉ. चन्द्रबली पाण्डे, कान्तिकिशोर भरतिया, डॉ. सुधीर कुमार गुप्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन मतों के अतिरिक्त स्वयं प्रकरण की प्रस्तावतना भो शूद्रक को ही मृच्छकटिकम् का रचयिता प्रमाणित करती है। परन्तु प्रस्तावना की लेखन शैली को लेकर अनेक शंकायें उत्पन्न हो जाती हैं। सर्व प्रथम जो शंका उत्पन्न होती है, वह यह कि क्या ये आमुख के श्लोक भो शूद्रक के लिखे हुये हैं या किसी ने बाद में लिख दिये हैं? इस सम्बन्ध में हमारी मान्यता है कि ये श्लोक स्वयं रचयिता द्वारा विरचित न होकर किसी प्रशंसक या अन्य कवि द्वारा बाद में जोड दिये गये से प्रतीत होते हैं। आधुनिक जितने भो प्रयास शूद्रक के सम्बन्ध में किये गये हैं उन सभो विद्वानों ने प्रायः ऐसा ही निष्कष निकाला है।'

डॉ. कुन्हन राजा, डॉ हरिदत्त शास्त्री, डॉ रमा शंकर तिवारी आदि विद्वान् 'मृच्छकटिकम्' को शूद्रक की कृति मानते हैं परन्तु प्रस्तावना के श्लोक शूद्रक द्वारा लिखे हुये नहीं मानते।

उक्त सम्पूर्ण मतों पर विचारोपरान्त निष्कष रूप से हम यह कह सकते हैं कि भारतीय परम्परा 'मृच्छकटिकम्' को शूद्रक की कृति मानती है। यहाँ यह भो उल्लेखनीय है कि 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता शूद्रक से भिन्न सिद्व करने वाले सभो प्रयास अभो विफल ही रहे हैं और जब तक पुष्ट प्रमाणों के आधार पर प्रचलित परम्परा का खण्डन नहीं हो जाता, तब तक यही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता शूद्रक हैं।

18.2.1 शुद्रक कौन था ? राजा था अथवा नहीं ?

इस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' के कर्ता शूद्रक ही हैं यह सिद्ध हो जाने पर भो एक प्रश्न जो आर उत्पन्न होता है वह यह कि शूद्रक सामान्य कवि था या राजा ? क्या उसने स्वयं ने ही यह लिखा या उसकी सभा के किसी कवि ने यह नाटक लिखकर उसके नाम से प्रसिद्ध कर दिया? यह प्रश्न इसलिए उत्पन्न होता है कि भारत में उक्त दोनों ही प्रकार के राजा हुये हैं। एक ओर ऐसे राजा हुये हैं जिन्होंने स्वयं काव्य की रचना करके साहित्य की अभिवृद्धि की है तथा दूसरी ओर ऐसे भो राजा हुये हैं जो कि स्वयं कवि न होकर मात्र कवियों के आश्रयदाता रहे हैं।

विद्वानों ने इस सन्दभ में गम्भोरता से अध्ययन किया है। अध्ययनोपरान्त दोनों ही प्रकार की सम्भावनाओं में कुछ तथ्य दृष्टिगोचर होता है परन्तु अधिक प्रमाण इस विषय में मिलते हैं कि वह स्वयं राजा भो था तथा कवि भो। 'मृच्छकटिकम्' का अध्ययन तथा उसमें प्राप्त कवि सम्बधी विवेचन भो इस बात की पुष्टि करता है कि उसका कर्ता स्वयं कवि तथा राजा था। सातवाहन संस्थापक सिमुक भो राजा तथा कवि दोनों ही था।

18.2.2 शूद्रक ब्राह्मण था, क्षत्रिय था या शूद्र था ?

शूद्रक एक राजा था, यदि वह राजा था तो उसकी जाति क्या थी ? वह ब्राह्मण था या क्षत्रिय था या शूद्र था ? यह प्रश्न भो विद्वानों में विवाद का विषय रहा है। शूद्रक की जाति को लेकर आज तक विद्वानों की मान्यता है, उसके अनुसार तीन मुख्य मत हैं। एक और अल्पसंख्यक विद्वानों ने शूद्रक को शूद्र माना है तो दूसरे कुछ विद्वानों ने उसे ब्राह्मण माना है। अधिकांश विद्वानों ने प्रस्तावना में प्रयुक्त उसके गुणों को प्रधानता देते हुये उसे क्षत्रिय माना है।

प्रथम मत के समर्थको में जो प्रबल समर्थक के रूप में सामने आते हैं, वे हैं डॉ. शेखर। डॉ. शेखर ने यह मत व्यक्त किया है कि शूद्रक क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण कदापि नहीं रहा होगा क्योंकि उसने 'मृच्छकटिकम्' में ऐसे चित्र अंकित किये हैं जो आभिजात्य के विरोधी हैं, उसने संस्कृत की तुलना में प्राकृत को प्रामुख्य प्रदान किया है और उसके द्वारा ब्राह्मण पोषित परम्पराओं का तिरस्कार किया गया है। डॉ. शेखर की तर्कना में आर्य बनाम अनार्य की मनोदृष्टि कार्यशील रही है जो उनकी सम्पूर्ण पुस्तक में आद्योपान्त दृष्टव्य है। इसो आधार पर डॉ. शेखर का यह भो कहना है कि कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्रम् में भास, कविपुत्र व सौमिलक के साथ शूद्रक का भो तिरस्कार कर दिया। डॉ. शेखर का उपर्युक्त तर्क प्रामाणिक व विश्वसनीय नहीं है। अतः अधिकांश विद्वानों ने इसे स्वीकार नहीं किया।

'शूद्र' के अतिरिक्त द्वितीय मत जो शूद्रक की जाति के सम्बन्ध में प्राप्त होता है, वह उसके क्षत्रिय होने के पक्ष में है। इस मत के समर्थक अपने मत की पुष्टी में जो प्रमाण या तर्क देते हैं, उनके अनुसार प्रस्तावना में जिन विशेषणों क्रमशः समर व्यसनी, अगाध सत्व, हस्तिकला में प्रवीण इत्यादि का प्रयोग क्षत्रिय के सम्बन्ध में ही सम्भव है। वास्तव में इन विशेषणों के आधार पर यह सोचना गलत तो नहीं कि वह क्षत्रिय होगा, पर किसी भो विषय या व्यक्ति पर विचार करने से पूर्व उसके दोनों पक्षों पर सोच लेना आवश्यक है।

प्रस्तावना में 'द्विजमुख्यतमः' विशेषण भो प्रयुक्त हुआ है जो उसे 'ब्राह्मण' मानने को प्रेरित करता है। यदि केवल 'द्विज' शब्द का प्रयोग होता, तब तो उसे क्षत्रिय माना जा सकता था क्योंकि 'द्विर्जायते इति द्विजः' अर्थात् जिसका दो बार जन्म होता है, वही 'द्विज' है। परन्तु यहाँ पर चूँकि 'द्विज' शब्द के आगे 'मुख्यतमः' इन चार अक्षरों का प्रयोग किया गया है जो कि निरर्थक नहीं हैं। व्याकरण की दृष्टि से भो 'तमप्' प्रत्यय का प्रयोग श्रेष्ठता को द्योतित करने के लिए ही किया जाता है। अतएवं यहाँ पर 'द्विज'के साथ 'मुख्यतमः' का प्रयोग करने का तात्पर्य ही यह द्योतित करता है कि वह द्विजों में मुख्यतम अर्थात् श्रेष्ठ बाह्मण था। यह कहना कि प्रस्तावना में दिये गये कवि सम्बन्धी गुण क्षत्रिय राजा में ही सम्भव है,

उचित नहीं है क्योंकि ब्राह्मण राजा के लिए भो ये गुण तथा विशेषण नियोजनीय होंगे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहाँ पर ऐसे अनेक ब्राह्मण राजा हुये हैं जो कि प्रस्तावना में प्रयुक्त गुणों से गुणान्वित थे। इतिहास में प्रसिद्ध सातवाहन शासक या आन्ध्रवंश के राजा भो ब्राह्मण ही थे। डॉ. भार्गव, भण्डारकर व अन्य इतिहासवेत्ताओं ने उन्हें ' ब्राह्मण जाति का' ही बतलाया है। अपने मत की पुष्टि में डॉ. भार्गव ने लिखा है कि इस वंश के प्रसिद्ध राजा गौतमीपुत्र ने अपने को ब्राह्मण कहा है।

यह तो हुई बाह्य प्रमाणों की बात। इसके अतिरिक्त यदि आन्तरिक प्रमाणों पर भो दृष्टि डाली जाये तो यह स्पष्ट है कि शूद्रक एक ब्राह्मण नरेश ही था। प्रकरण के नवें अंक में ज्योतिष तथा मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रों के उ)रण इस बात के प्रमाण हैं कि वह ब्राह्मण था तथा ज्योतिष व धर्मशास्त्रों का काफी अध्ययन कर रखा था। ब्राह्मण शर्विलक को राज्य विप्लव का नायक बनाने तथा दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त को प्रकरण का नायक बनाने तथा उसके चरित्र का उदारता एवं क्षमाशीलता के पूर्णतया आलोक से उद्भासित करने के तथ्य की सफाई राजा शूद्रक के इसी जीवन रहस्य में है कि वह ब्राह्मण था। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में दरिद्रता का आदर्शीकरण तथा नैतिक स्लखन के बावजूद उसके अन्तर्निहित सत्व को उत्तेजित करना – ये सभो तथ्य अपने आप में कुछ महत्त्व रखते हैं तथा इनमें कुछ सार है।

ऐसी स्थिति में विद्वानों का यह संदेह उठाना कि यदि शूद्रक ब्राह्मण राजा होता तो उसने निम्न स्तरीय चरित्रों को प्रमुखता देकर आभित्याज विरोधी भावनायें प्रदर्शित नहीं की होती, मूलतः गलत है। इस संबंध में हमारा यह कथन है कि शूद्रक एक क्रान्तिकारी राजा था तथा उसे हर क्षेत्र में, जिनमें एक साहित्य का भो क्षेत्र आ जाता है, प्राचीन समय से चली आ रही परम्परा अभिप्रेत नहीं थी, वह लकीर का फकीर नहीं बनना चाहता था। यही कारण था कि उसने पिटी–पिटाई लकीर से अलग होकर आभिजात्य वर्ग तथा राजसी व देवयोनि के पात्रों को अपने प्रकरण में प्रधानता न देकर एक लौकिक वास्तविक जीवन का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया। यही कारण है कि आज 'मृच्छकटिकम्' का न केवल संस्कृत साहित्य में अपितु विश्व के साहित्य में भो महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके साथ ही शूद्रक का रोमान्टिक व्यक्तित्त्व जिसके निर्माण में उसके जीवन के अपने व्यक्तिगत अनभव होंगे, ऐसे चरित्रों की अवतारणा के लिए उत्तरदायी रहा होगा। 'राजश्री' प्राप्त करने के संदभ में भो उसे क्षत्रीय सत्ता के साथ संघर्ष करना पड़ा था क्योंकि वही सातवाहन वंश का प्रथम शासक था जैसा कि डॉ. भार्गव व अन्य इतिहासकारों ने माना है। अतएव बिलकुल स्वाभाविक ढग से शूद्रक ने प्रस्तुत नाटक में स्थिर स्वार्थों को स्थान न देकर निम्नवर्गीय पात्रों के चरित्रों का उत्कष चित्रित किया है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता शूद्रक ब्राह्मण राजा ही था, क्षत्रिय या शूद्र नहीं। प्रस्तावना में प्रयुक्त 'द्विजमुख्यतमः' शब्द का तात्पर्य भो उक्त कथन की ही पुष्टि करता है। 'द्विजमुख्यतमः' की व्याख्या हमारे मतानुसार इस प्रकार करना उचित होगा –

''ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–द्विजेषु ब्राह्मणस्यैव वेदादिषु श्रेष्ठत्वकथनादत्र मुख्यतः ब्राह्मण एवेति वाच्यम्।''

इस प्रकार मृच्छकटिकम् के कर्ता शूद्रक का ब्राह्मण होना हमारी इस धारणा को ओर भो दृढ करता है वह सिमुक ही था, क्योंकि सिमुक भो एक ब्राह्मण राजा ही था।

सिमुक व शूद्रक में प्राप्त समानताओं में एक महत्वपूर्ण समानता उसका दाक्षिणात्य होना भो है। कतृत्व व काल के विषय में मतमतान्तर होते हुये भो रचयिता के निवास स्थान के सन्दभ में प्रायः मतैक्य है। अधिकांश विद्वानों ने मृच्छकटिक के रचयिता का निवास स्थान दक्षिण का कोई प्रदेश ही निश्चित किया है। प्रदेश विशेष को लेकर मतमतान्तर किंचित् मात्रा में हो सकता है परन्तु इस विषय में प्रायः सब एक मत हैं कि वह दाक्षिणात्य था।

18.3 शूद्रक का काल –

जिस प्रकार 'मृच्छकटिम्' के रचयिता को इतिहास में खोजना विद्वानों के लिए एक समस्या रही है उसी प्रकार उसकी रचना का समय निर्धारण करना भो बहुत कठिन प्रमाणित हुआ है। वास्तव में देखा जाय तो दोनों प्रश्न ही अन्योन्याश्रित हैं, एक का पता लगने पर दूसरे का अपने आप ही लग सकता है। इतिहास में शूद्रक को ढूंढने के जो प्रयास किये गये उनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। यहाँ पर काल निर्णय सम्बन्धी मतों को प्रस्तुत करेंगे।

किसी भो रचना अथवा रचयिता का काल निर्णय करने के लिये प्रायः दो मार्ग अपनाये जाते हैं। प्रथम आभ्यन्तर प्रमाण का सहारा लिया जाता है तथा द्वितीय बाह्य प्रमाणों के आधार पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकर्ता का काल निश्चित किया जाता है। 'शूद्रक' के काल निर्णय हेतु दोनों ही दृष्टियों से विचार किये गये हैं तथा निष्कर्ष भो निकालने के प्रयास किये गये हैं। इस समबन्ध में आज तक जो कार्य हुआ ह उसके अनुसार इसका समय तृतीय शताब्दी ईस्वी पूर्व से लेकर अष्टम शताब्दी तक दोलायमान है। विद्वानों द्वारा इस लम्बी अवधि में विभिन्न तिथि सम्बन्धी मत रखे गये हैं जो सप्रमाणिक होते हुये भो पूर्णरूपेण अकाट्य नहीं कहे जा सकते।

18.3.1 ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से ई. पूर्व प्रथम शताब्दी –

स्कन्दपुराण में शूद्रक विषयक उल्लेख प्राप्ति के आधार पर मृच्छकटिकम् के 'कर्ता' शूद्रक को आन्ध्रवंश के आदिम राजा से अभिन्न मानने का प्रयास विद्वानों द्वारा समय समय पर किया गया है। इस सन्दभ में ई.पू. द्वितीय शताब्दी तथा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी शूद्रक का काल निर्धारित किया गया है। इस मत के प्रमुख समर्थकों में कनल विल्फोर्ड विल्सन, डॉ. भण्डारकर, एम.आर.काले, डॉ. भार्गव, एवं डॉ. हरिदत्त शास्त्री आदि हैं। सभो विद्वानों ने अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के आधार पर उक्त काल की पुष्टि का प्रयास किया है।

(1) डॉ. भण्डारकर का कथन है कि सातवाहन नरेशों का शासन काल 'वृहत्कथा' तथा 'गाथासप्तशती' जैसे काव्य ग्रन्थों के प्रणयन से सौरभित था और ये ग्रन्थ उनके प्राकृत प्रेम के परिचायक समझे जायेंगे। पुनः सातवाहनों के काल में बौद्धधर्म की यथेष्ठ उन्नति हुई थी और उसे राज्य की ओर से प्रचुर प्रोत्साहन भो मिला था। श्री काले एवं विल्सन दोनों ने डॉ. भण्डारकर के उक्त विषयों को उदृत करते हुये अपने पृथक्–पृथक् मत व्यक्त किये हैं। विल्सन महोदय का कथन है कि 'मृच्छकटिकम्' में प्राकृत भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है और संवाहक भिक्षु के प्रति प्रदर्शित व्यवहार से बौद्ध धर्म की उन्नत एवं सम्मानपूर्ण अवस्था का अर्थ ग्रहण किया है। इन्हीं व अन्य आधारों पर आपने 'मृच्छकटिकम्' को सातवाहनकाल की रचना माना हैं। इस सम्बन्ध में आपने दो अन्य तर्क भो दिये हैं – पहला तर्क शकार द्वारा प्रस्तुत किये गये उल्टे – सीधे उद्धरणों से सम्बन्धित ह। विल्सन का कथन है कि 'उसके सम्पूर्ण उद्धरण रामायण तथा महाभारत से लिये गये हैं और पौराणिक कथाओं से प्राप्त ध्रुव, दक्ष, प्रहलाद प्रभति पात्रों की कोई चर्चा उनमें उपलब्ध नहीं है। इससे जान पडता है कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना पुराणों के पूर्व हुई होगी क्योंकि नाटककार उनकी कथाओं से परिचित नहीं जान पड़ता। आपका दूसरा तर्क यह है कि ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना में जो वैध दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित हो गया है, उससे भो लक्षित होता है कि नाटक उस समय के पूर्व रच गया होगा जब ब्राह्मण एवं शूद्र में वैवाहिक सम्बन्ध निषिद्ध ठहराया गया।

(2) विल्सन के अतिरिक्त डॉ. काले ने भो अन्तः साक्ष्यों को आधार मानते हुये इस प्रकार अपना मत प्रस्तुत किया हैः–

(क) यह नाटक ऐसे समय की ओर संकेत करता है जब बौद्धधर्म उन्नत अवस्था में था। बौद्ध भिक्षुओं का जनता में सम्मान था, वे भिक्षु के धर्म का सावधानी से पालन करते

थे। ई सम्वत् के प्रारम्भ काल में बौद्ध धर्म ह्यास की ओर अग्रसर हो गया था, अतः इस नाटक की रचना इससे पूर्व ही माननी चाहिए।

(ख) वैशिकी कला 1–(4) का उल्लेख तथा किसी वेश्या के नायिका होने की कल्पना वात्स्यायन के कामसूत्र की रचना के समकालीन है। वात्स्यायन क कामसूत्र का समय 100 ई.पू. से पश्चात् नहीं हो सकता, अतः 'मृच्छकटिकम्' का समय भो इसके ही निकट है।

(ग) बाद में प्रचलित नाट्यकला के अनेक नियमों से 'मृच्छकटिकम्' का कर्ता परिचित नहीं है, जैसे किसी रस विशेष की प्रधानता अथवा किसी पात्र विशेष के लिए किसी प्राकृत विशेष की योजना। साथ ही नाटक की सरल किन्तु चित्रपूर्ण शैली न तो कालिदास के समान कोमलकान्त पदावलि में है और न ही भट्टनारायण एवं भवभ्ति के समान कृत्रिम एवं कलापूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत नाटक के प्रारम्भिक काल की रचना है।

(घ) नवम अंक में अधिकरणिक द्वारा कथित 'अंगारक–विरूद्धस्य' इत्यादि श्लोक में मंगल को बृहस्पति का शत्रु ग्रह बतलाया गया है। यह मान्यता वराहमिहिर के विपरीत पड़ती है और उनके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्यों द्वारा यह मान्य थी जिनका कि उल्लेख उसने 'वृहज्जातक' में किया है। डॉ. काले का इस सन्दभ में कथन है कि वराहमिहिर का समय 500 ई. के लगभग निर्धारित किया गया है। अतः 'मृच्छकटिकम्' की रचना उसके अनेक शताब्दी पूर्व होनी चाहिए।

3. प्रसिद्ध इतिहासकार श्री डे ने भो 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता शूद्रक को स्वीकार करते हुये नाटक में प्रयुक्त शकार तथा विट के रूप साक्ष्य तथा कामसूत्र के अनुसार वसन्तसेना के चित्रण के कारण नाटक का रचनाकाल ई.पू. प्रथम तथा ई. की प्रथम सदी के मध्य माना हैं।

4. डॉ. हरिदत्त शास्त्री एवं डॉ. देवस्थली आदि कतिपय विद्वानों ने नवम अंक में 'प्राप्त' 'अयं हि पातकी विप्रो' इत्यादि श्लोक के आधार पर 'मृच्छकटिकम्' को मनुस्मृति के आसपास की रचना माना है। डॉ. शास्त्री ने बूलर के मत को प्रमाण स्वरुप रखकर मनुस्मृति का समय 200 ई.पूर्व और 200 ई. के बीच माना है। 'मृच्छकटिकम्' में मनुस्मृति के नियम को क्योंकि माना नहीं गया है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'मृच्छकटिकम्' का समय मनुस्मृति के रचनाकाल के आस पास ही होगा जब मनु के नियम अधिक प्रचलित नहीं हुये होंगे। आपने 'मृच्छकटिकम्' के रचनाकाल सम्बन्धी निष्कर्षों में लिखा है कि 'यद्यापि हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना द्वितीय शताब्दी ई.पूर्व. की है। सम्भव है आन्ध्रमृत्यवंश के राजा सिमुक ही 'शूद्रक' हो जिनकी यह रचना हो।

5. शूद्रक के समय के स्थिरीकरण के विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण कसौटी कालिदास का आविर्भाव काल है। इस विषय में भो दोनों पक्ष विद्यमान हैं – कुछ विद्वानों ने कालिदास को पूर्ववर्ती व कुछ ने उसे पूर्ववर्ती माना है। 'शूद्रक' कालिदास से पूर्ववर्ती नहीं था इसके लिए विद्वानों के पास मुख्य प्रमाण 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तावना में भास, सौमिलक आदि के साथ शूद्रक के नाम का न होना है। डॉ. रमाशंकर तिवारी ने कालिदास द्वारा नामोल्लेख न करने के सन्दभ में कई प्रश्नों को उठाकर उनका

समाधान करते हुये निष्कष यही निकाला है कि ''कालिदास ने 'मृच्छकटिकम्' तथा उसके रचयिता शूद्रक की किन्हीं साहित्येतर कारणों से उपेक्षा की, यह मानने में हम असमर्थता का अनुभव करते हैं। हमारी विविक्षा यह है कि शूद्रक कालिदास का परवर्ती है। इसी प्रकार जागीरदार व अन्य भो अनेक विद्वानों ने शूद्रक को कालिदास का परवर्ती कवि माना है।

दूसरी ओर कालिदास के नाटकों को 'मृच्छकटिकम्' की नाट्यकला व उसके प्रभावों से प्रभावित जानकर विद्वानों ने शूद्रक को कालिदास से पूर्ववर्ती स्वीकार किया है। डॉ. शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने कालिदास को शूद्रक का परवर्ती कवि माना है। आपने अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये हैं:–

(क) कालिदास के नाटकों में 'मृच्छकटिकम्' की कुछ छाप दिखाई पडती है। कालिदास का समय लगभग 100 ई.पू. है, अतः 'मृच्छकटिकम्' की रचना इससे कुछ पूर्व अवश्य हो चुकी होगी। प्रश्न होता है कि फिर कालिदास शूद्रक के प्रति मौन क्यों हैं ? जब उन्होंने अपने पूववर्ती भास का उल्लेख किया है। कारण यह है कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति अशान्तिमय होने के कारण कविगण प्रायः किसी उपलब्ध नाटक के परिष्कार एवं परिवर्धन में अपना कौशल प्रदर्शन करतें थे। किसी समय समकालीन या पूर्वकालीन राजनीतिक क्रान्ति के आधार पर वे मूल रचना में दर्शकों की रूचि के अनुसार परिवर्तन करते थे। कालिदास को सम्भवतः यह पता रहा होगा कि 'मृच्छकटिकम्' न कोई मौलिक रचना है और न शूद्रक ही उसके लेखक हैं। कालिदास के अनुसार 'मृच्छकटिकम्' के रचयिता रामिल और सौमिल रहे होगें क्योंकि इन्हीं का उलेख उन्होंने मालविकाग्निमित्रम् में किया है।

(ख) मृच्छकटिकम् में ' राष्ट्रिय' शब्द का प्रयोग वस्तुतः एक पुलिस के अधिकारी के अर्थ में हुआ है। किन्तु परवर्ती साहित्य में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग ''राजा के साले'' के अर्थ में हुआ है। कालिदास ने राष्ट्रिय शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। अतः 'मृच्छकटिकम्' कालिदास के पूर्व की रचना है।

6. डॉ सुधीर कुमार गुप्त भो 'मृच्छकटिकम्' को कालिदास से पूर्व की रचना मानते हैं। आपने कालिदास द्वारा शूद्रक का नामोल्लेख न करने के सन्दभ में एक दो सम्भावनाएँ की हैं। आपने लिखा है हो सकता है कि 'मृच्छकटिकम्' का उल्लेख कालिदास के विक्रमोर्वशीय के 'पूर्ववर्ती कवीनाम्' के अन्तर्गत आ गया हो। द्वितीय सम्भावना आपने कालिदास को शूद्रक के सभाकवि के रूप में मानकर की है। उसके अनुसार ''यदि कृष्णचरित्र के अनुसार शूद्रक वस्तुतः 'मृच्छकटिकम्' के रचयिता थे, तो कालिदास उनके सभाकवि होने के कारण स्पष्ट शब्दों में शूद्रक का नाम निर्देश करते हुये अपने नाटक की प्रशंसा नहीं कर सकते थे। यह भो सम्भव है कि शूद्रक का नाटक कालिदास के नाटकों से पहले अभिनीत न हुआ हो। राजा ने अपने अवकाश काल मे शान्ति स्थापित होने के उपरान्त ही इसे लिखा होगा। उस समय तक कालिदास का मालविकाग्निमित्रम् लिखा जा चुका हो। अतः शेष दो नाटकों में किसी भो कवि का नामतः निर्देश न किया जाना महत्त्वपूर्ण है। निष्कष के रूप में आपने लिखा है कि भास, कालिदास और शूद्रक आस पास हो रहे होंगे।''

7. डॉ. रामजी उपाध्याय भो डॉ. गुप्त व व्यास के मत से सहमति रखते हैं। आपने भो स्पष्ट लिखा है – ''मृच्छकटिकम्'' की नाट्यकला और भाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि इसकी रचना अवश्य ही कालिदास के नाटकों के पहले हुई।''

8. डॉ. परांजपे भो 'मृच्छकटिकम्' को कालिदास के पूर्व की रचना मानते हैं। इसके लिए आपने प्रकरण में प्रयुक्त कायस्थ तथा राष्ट्रिय आदि शब्दों के अर्थ तथा प्रयोग क्रम का विवेचन किया है। 'मृच्छकटिकम्' में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग एक पुलिस के अधिकारी के रूप में हुआ है, जो कि उसके शाब्दिक अर्थ के अधिक उपयुक्त है, जबकि कालिदास ने इस शब्द को रूढि करके राजा के साले के स्थान पर प्रयुक्त किया है। कायस्थों को आप एक विदेशी जाति मानते हैं तथा पल्लवों के वंशगत समूह से सम्बन्ध स्वीकारते हैं। द्वितीय, चूंकि भारतीयों ने यूनानियों तथा रोमनों से नक्षत्र विद्या अपनाई, अतः 'मृच्छकटिकम् के छठे अंक में प्राप्त ज्योतिष–विषयक उल्लेख ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में स्वाभाविक समझे जा सकते हैं। ''

उक्त सभो मतों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत साहित्य की एक प्राचीन रचना है। भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास का समय ईसा पूर्व 56 के लगभग है। अतः शूद्रक का समय इससे पूर्व या समीपवर्ती होना चाहिए।

18.3.2 300 से 700 ई. मध्य –

विद्वानों का दूसरा समूह उक्त उक्तियों के स्वीकृति प्रदान नहीं करता। उनके मतानुसार चूँकि 'मृच्छकटिकम् ' 'चारुदत्त' का परिवर्द्धित संस्करण है। अतः शूद्रक का समय इतने पूर्व का स्वीकृत नहीं किया जा सकता। इन विद्वानों ने बाह्य प्रमाणों को अपने मत का मूलाधार बनाया है। उदाहरणार्थ –

1. आचार्य वामन ने अपनी कृति 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में (शूद्रकविरचितेषु प्रबन्धेषु') शूद्रक विरचित प्रबन्ध का उल्लेख किया है तथा 'द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनम् राज्यम्' 'मृच्छकटिकम्' के इस द्यूत प्रंशसा परक वाक्य को उद्धृत भो किया है, जिससे प्रमाणित होता है कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' (आठवीं शताब्दी) के पूर्व हो गई होगी।

   वामन के पूववर्ती आचार्य दण्डी ने भो अपने 'काव्यादर्श' में 'मृच्छकटिकम्' के 'लिम्पतीवतमोऽगानि पद्यांश को अलंकार निरुपण करते समय उद्धृत किया है। उक्त प्रमाणों के आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना सप्तम शताब्दी के पहले ही हुई होगी। वे शूद्रक व 'मृच्छकटिकम्' की रचना पञ्चम् शतक में मानते हैं।

2. उपाध्याय जी के अतिरिक्त प्रो आर.वी. जागीरदार ने भो 'मृच्छकटिकम्' का रचना काल ईसवी के पञ्चम शतक तथा षष्ठ शतक के मध्य माना है। आपने 'मृच्छकटिकम्' के भाषा पक्ष तथा वस्तुतत्व का समीक्षण करते हुये यह निष्कष निकाला है कि 'मृच्छकटिकम्' की रचना उस समय हुई जबकि समाज में भाग्यवादिता बढी जा रही थी, बौद्धधर्म का पुनरूत्थान हो रहा था तथा प्राकृत के अतिरिक्त अपभश भो प्रायः बोलचाल में प्रयुक्त होती थी। ऐसी परिस्थितियाँ गुप्तों के पतन तथा हर्ष के राज्यकाल के मध्य में समग्र रूप से दीख पडती है। इसी सन्दभ में जागीरदार ने मृच्छकटिकम् पर कालिदास का प्रभाव खोजकर अपने मत का समर्थन किया है।

3. डॉ. भोलाशंकर व्यास ने भो गुप्ता साम्राज्य के पतन के बाद की अराजकता तथा गुप्तकालीन समाज की पृष्ठभ्मि पर विस्तार से दिग्दर्शन कराते हुये धर्म, संस्कृति, राजनीति से सम्बन्धित अनेक अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर यही निष्कष निकाला है कि 'मृच्छकटिकम्' का रचना काल ईसा की पांचवी सदी के उत्तरार्द्ध या छठी सदी के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है।

4. डॉ. सालेटोर 'मृच्छकटिकम्' की रचना का काल सप्तम शताब्दी का मध्य व अष्टम शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश मानते हैं। आपका कथन है कि नाटक का पूर्वार्द्ध (शिवमार प्रथम द्वारा) ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य के लगभग तथा उत्तरार्द्ध (शिवमार द्वितीय) द्वारा आठवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में रचा होगा और सौ–सवा सौ वर्षों के इस अन्तराल के बावजूद जो दोनों अंशों की शैली में अन्तर नहीं पडा उसका कारण था शिवमार द्वितीय की निराली काव्य–प्रतिभा।''

   सालेटोर की उक्त स्थापना व्यवस्थित होते हुये भो विश्वसनीय नहीं है। युग्म कर्तृत्व की स्थापना अपने आप में अन्यन्त्र कमजोर है, साथ ही नाटक की रचना शैली व टेकनीक भो इतने बाद का समय मानने को प्रेरित नहीं करती।

5. डॉ. जौल्ली भो 'मृच्छकटिकम्' में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उसका रचना काल पञ्चम शताब्दी के लगभग मानते हैं। आपके मत का प्रमुख आधार प्रकरण का नवम अंक है। प्राणदण्ड के कार्यान्वयन हेतु विष खिलाकर मार डालने, जल में डुबोने, यन्त्र पर चढाने तथा अग्नि में प्रविष्ट कराने, चाण्डालों द्वारा शरीर पर आरा चलाये जाने के अतिरिक्त, चार विकल्पों के कथन को, न्याय कार्य में श्रेष्ठिन्, की उपस्थिति को न्यायाधीश के इस कथन को कि 'हम लोग यानी न्यायाधीश निर्णय के अधिकारी हैं, शेष बात यानी निर्णय के कार्यान्वयन की बात राजा जाने तथ अन्य सम्बद्ध तथ्यों को प्रमाण रुप में प्रस्तुत कर जौल्ली ने यह प्रतिपादन किया है कि 'मृच्छकटिकम्' में इनका सन्निवेश सूचित करता है कि नारद तथा बृहस्पति के बाद वाले समय में ही नाटक का प्रणयन हुआ।' डॉ. रमाशंकर तिवारी ने जौल्ली के उक्त मत को अपने मत की पुष्टि में रखते हुये नारद तथा बृहस्पति का समय सन् 100 ईस्वी और 400 ईस्वी के बीच का माना है तथा इन आधारों पर 'मृच्छकटिकम्' को पञ्चम शताब्दी की रचना माना है।

6. डॉ. रमाशंकर तिवारी भो अपने निष्कर्षों में ईसा की षष्ठ शताब्दी का अन्तराल ही 'मृच्छकटिकम्' का प्रणयन काल बतलाते हैं। आपने लिखा है –''मृच्छकटिकम्' के रचयिता शूद्रक ने दक्षिण भारत में राजसत्ता का उपभोग उस अवधि में किया होगा जो गुप्त साम्राज्य के पतन (500 ईस्वी) से प्रारम्भ होती है और थानेश्वर के महाराजा हर्षवर्धन के उदयकाल (606 ईस्वी) में समाप्त होती है। वह युग भारतीय इतिहास में विकेन्द्रीकरण का काल रहा है, जब देश अनेक छोटे–छोटे स्वाधीन राज्यों में बंटा हुआ था जिनमें हूणों द्वारा संस्थापित राज्य भो था जो विदेशी आक्रान्ता थे। शूद्रक ऐसे ही छोटे–छोटे नरेशों में था जिसको या तो सत्ता प्राप्ति के लिये स्वयं कोई छोटा–मोटा संघर्ष करना पडा था या फिर किसी सत्ताहरण वाले काण्ड में उसकी गहरी दिलचस्पी थी।''

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'मृच्छकटिकम्' व उसके रचयिता का समय ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी से लेकर 800 ईसवी तक दोलायमान है। इनमें भो (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) सात वाहन काल तथा उत्तर गुप्ता काल दोनों पर अधिक जोर दिया गया है। जहाँ तक उत्तरगुप्तकाल या ईसा की पांचवी तथा छठी शताब्दी का समय 'मृच्छकटिकम्' का प्रणयन काल मानने का विद्वानों का मत है वह मात्र इस आधार पर आधारित है कि 'चारुदत्त' भास की रचना है तथा 'मृच्छकटिकम्' उसके बाद लिखा गया, उसका परिवर्द्धित संस्करण है, अतः वह ईसा पूर्व की रचना नहीं हो सकता। द्वितीय जो उनका आधार हमने समझा है वह कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में 'शूद्रक' के नाम का न होना है। उक्त दो धारणाओं ने ही मूल रूप से शूद्रक व 'मृच्छकटिकम्' को बाद की रचना मानने हेतु विद्वानों को प्रेरित किया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि जब तक भास नाटक चक्र की खोज न हुई थी तब तक 'मृच्छकटिकम्' एक पुरानी कृति के रूप में माना जाता था। परन्तु ज्यों ही गणपति शास्त्री ने तेरह नाटकों को भास के नाम से विख्यात किया त्योंही 'मृच्छकटिकम्' व उसके रचयिता का काल पीछे हटता गया और आज स्थिति आठवीं शताब्दी तक पहुँच चुकी है। परन्तु यह दुःख का विषय है कि जिन विद्वानों ने ईसा की पांचवी व छठी शताब्दी 'मृच्छकटिक' का रचनाकाल प्रमाणित किया उनमें से अधिकांश ने उसके रचयिता को इतिहास में ढूंढने का कोई प्रयास नहीं किया तथा यदि किया भो तो वे प्रायः असफल रहे।

18.3.3 उपसंहार –

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'मृच्छकटिकम्' व उसके रचयिता का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मानना अधिक समुचित होगा। इसका रचयिता सातवाहन वंश का प्रथम नरेश 'सिमुक' ही है जिसके कि पुराणों में अनेक नाम प्राप्त होते हैं। न केवल रचयिता विषयक साम्य हमें उक्त समय को मानने हेतु प्रेरित करता है अपितु 'मृच्छकटिकम्'

में चित्रित समाज व्यवस्था, तत्कालीन धार्मिक स्थिति व प्रकरण की रचना शैली भो उक्त समय का पूर्ण समर्थन करती है। प्रो. काले, विल्सन, डॉ. भण्डारकर आदि के तर्क जिनको पहले प्रस्तुत किया जा चुका है– उक्त मत का पूर्ण समर्थन करते हैं। जहाँ तक द्वितीय शताब्दी आन्ध्र शासकों का समय था, शूद्रक का समय मानने का प्रश्न है वह स्कन्दपुराण के कथन के आधार पर माना गया है जो कि प्रायः इतिहास वेत्ताओं द्वारा गलत प्रमाणित हो चुका है। डॉ. राय चौधरी, डॉ. भार्गव व डॉ. भण्डारकर ने आन्ध्रवंश की स्थापना का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही माना हैं।

18.4 'मृच्छकटिकम् की कथावस्तु –

'मृच्छकटिकम् दस अंकों का एक प्रकरण है, प्रस्तुत प्रकरण की कथावस्तु जनश्रुति अथवा लोककथा पर आधारित प्रतीत होती है। इसमें दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना के प्रणय की कथा विभिन्न सामाजिक मोडों के साथ वर्णित हुई है। भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार प्रस्तुत प्रकरण का प्रारम्भ भो नान्दीपाठ से है जिसमें स्रग्धरा तथा अनुष्टुप् छन्दों में रचित दो श्लोक हैं। प्रथम श्लोक में भगवान् शिव की प्रलयोन्मुख परमात्मा में लीन निर्विकल्प समाधि तथा दूसरे में पार्वती की भजलताओं से सुशोभित शंकर के नीले कण्ठ से सामाजिकों के मंगल की याचना की गई है।

नान्दी पाठ के बाद प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। प्रारम्भ में कुछैक श्लोकों में रचयिता व रचना के विषय में परिचय दिया गया है। नाटककार ने अपनी प्रतिभा से सम्पूर्ण नाटक की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय प्रस्तावना में ही सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत कर दिया है। उसके अनुसार ''उज्जयिनी में (पहले) ब्राह्मण व्यापारी किन्तु (बाद में) दरिद्र युवक चारुदत्त (रहता था) और वसन्त (ऋतु) की सुन्दरता जैसी (रमणीय) वसन्तसेना नामक वेश्या (चारुदत्त के) गुणों के कारण (उससे) प्रेम करती थी। इस 'मृच्छकटिकम्' प्रकरण में उन दोनों के श्रेष्ठ आनन्दोत्सव पर आश्रित, नीति का आचरण, विवाद, विचार (व्यवहार) की दोषपूर्णता, दुष्टों के स्वभाव तथा होनहार – इन सबका राजा शूद्रक ने ग्रंथन किया है।''

18.4.1 अंकानुसार कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण –

प्रस्तुत प्रकरण में दस अंक हैं। कथावस्तु के अनुसार प्रत्येक अंक का नामकरण किया गया है। प्रथम अंक का नाम' अलंकार न्यास' है। इस अंक की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है:–

रचयिता व रचना के विषय में परिचय देने के बाद सूत्रधार अपने घर में असाधारण तैयारी देखकर चकित होता है। पूछने पर नटी से उसे मालूम होता है कि वह तैयारी 'अभिरुपपति' नामक व्रत के निमित्त की गई है। इस पर प्रारम्भ में वह कुछ झुंझलाता है परन्तु नटी के समझाने पर शान्त हो जाता है। नटी उसे किसी बाह्मण को निमन्त्रित करने के लिए कहती है। वह ब्राह्मण की तलाश में निकलता है। मार्ग में उसे चारुदत्त का मित्र मैत्रेय दृष्टिगोचर होता है। सूत्रधार उसे भोजन के निमित्त निमन्त्रण देता है। परन्तु मैत्रेय निमंत्रण को अस्वीकार कर देता है। तब सूत्रधार किसी अन्य ब्राह्मण की खोज में चला जाता है। यहीं प्रस्तावना समाप्त होती है।

प्रस्तावना के बाद प्रथम दृश्य में प्रारम्भ मे हम मंच पर मैत्रेय को देखते हैं। मैत्रेय के कथन से ज्ञात होता है कि आर्य चारुदत्त के प्रिय मित्र चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलों से सुगन्धित उत्तरीय को देवकार्य सम्पादित करने वाले चारुदत्त के पास ले जाने का उसे निर्देश दिया है। उसी समय चारुदत्त व मदनिका का मंच पर प्रवेश होता है।

चारुदत्त के प्रथम परिचय में हमें उसकी निर्धनता के विषय में ज्ञान होता है। वह अपने भत् व वर्तमान की स्थितियों को देखकर अपने भाग्य विपर्यय पर चिन्ता व्यक्त करता है। उसी समय अपने सर्वकालमित्र मैत्रेय को देखकर प्रसन्न होता है तथा उसका स्वागत करता है। मैत्रेय उसे चूर्णवृद्ध प्रदत्त दुपट्टा देता है। तदुपरान्त दोनों में दरिद्रता को लेकर वार्ता होती

है। चारुदत्त दरिद्रता से अत्यन्त दुःखी है तथा दरिद्रता व मृत्यु दोनों में मृत्यु को अधिक पसन्द करता है – ''दारिद्र्यात् मरणात्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।'' विदूषक मित्र होने के नाते उसे समझाता है तथा सान्त्वना प्रदान करता है।

इसके बाद चारुदत्त मैत्रेय को मातृदेवियों को बलि अर्पण करने के लिए चौराहे पर जाने को कहता है। विदूषक उस समय राजपथ पर जाने में भय व्यक्त करता है। चारुदत्त उसे ठहरने को कहकर समाधि पूजा इत्यादि करने लगता है।

प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य मे शकार, विट और चेट वसन्तसेना का पीछा करते हुये दिखाई देते हैं। यह भयभोत होकर आगे–आगे भाग रही है तथा तीनों उसे पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। शकार राजा का साला है जो कि कामासक्त है। वह वसन्तसेना को किसी भो तरह से अपने वश में करना चाहता है। वह उसे मारने तक की धमकी दे डालता है। परन्तु वह इन सबकी परवाह न करते हुये भागी जाती है। वह एक स्थल पर शकार को डाट भो देती है। इसी बीच शकार के ही वाक्यों से वसन्तसेना को ज्ञात हो जाता है कि 'कामदेवायतनोद्यान' में जिस चारुदत्त पर वह आसक्त हुई थी, उसी के घर के समीप पहुँच गई है। वसन्तसेना शकार के कथन को सुनकर चारुदत्त के घर में अपने बचाव के लिये प्रवेश करती है। उधर बाहर निकलते ही शकार वसन्तसेना समझकर अंधेरे में रदनिका को पकड लेता है। वह प्रतिवाद करती है। इतने में विदूषक दीप लेकर घर से बाहर निकलता है तथा .रदनिका के प्रति अन्यायपूर्ण अभद्र आचरण देखकर शकार को डांट–फटकार कर बाहर निकाल देता है। विट विदूषक को पहचान लेता है तथा क्षमा याचना करके उससे यह अनुरोध करता है कि उस घटना के सम्बन्ध में आर्य चारुदत्त से कोई चर्चा न करे।

उधर चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर बालक रोहसेन को अन्दर ले जाने के लिए कहता है। वह उसे ओढ़ाने के लिए दुपट्टा भो उस पर फैकता है। उस दुपट्टे की सुगन्ध से प्रसन्न होकर वसन्तसेना अनुमान लगाती है कि अभो चारुदत्त का यौवन निर्धनता के कारण उदासीन नहीं बन पाया है। वसन्तसेना बिना कोई उत्तर दिये चुपचाप खडी रहती है। इसी बीच विदूषक और रदनिका अन्दर आते हैं तब मैत्रेय वस्तुस्थिति बतलाता है। तब चारुदत्त वसन्तसेना को पहचानता है तथा उससे क्षमा–याचना करता है। विदूषक रदनिका के अपमान की घटना को छोडकर शेष सारा वृतान्त चारुदत्त को बता देता है। इसके बाद वसन्तसेना अपने आभ्षणों को धरोहर के रूप में रखने का प्रस्ताव रखती है। थोडी सी हिचकिचाहट के बाद चारुदत्त अलंकारों को रख लेना स्वीकार कर लेता है। चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना को उसके घर पहुँचा आते हैं। चारुदत्त आभ्षणों की रक्षा का भार दिन में वर्धमानक को और रात में विदूषक को सौंपता है। यही प्रथम अंक समाप्त हो जाता है। आभ्षणों की धरोहर के कारण यह अंक 'अलंकार न्यास' की संज्ञा से प्रसिद्ध है।

द्वितीय अंक –

द्वितीय अंक की अभिधा ''द्यूतकर–संवाहक'' अंक अर्थात् जुआरी संवाहक अंक है। इस अंक में एक नये प्रमुख पात्र संवाहक की अवतारणा कराई गई है, जिसने नाटकीय वस्तु–संघर्ष के समाधान में महत्त्व की भ्मिका सम्पन की है।

इस अंक में तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और रदनिका का मंच पर प्रवेश दिखलाया गया है। वसन्तसेना चारुदत्त के विषय में चिन्तामग्न दिखाई गई है। मदनिका विस्वस्त दासी होने के नाते उससे उदासी व उद्विग्नता का कारण पूछती है। वसन्तसेना चारुदत्त के
सम्बन्ध में अपना प्रेम व्यक्त करती है। मदनिका चारुदत्त की निर्धनता की ओर उसका ध्यान आकर्षित करती है। परन्तु वसन्तसेना का कथन है कि 'वह यह जानते हुये कि वह अत्यन्त दरिद्र है, उसे प्यार करती है क्योंकि दरिद्र व्यक्ति से प्रम करने वाली गणिका की दुनिया निन्दा नहीं करती।'' द्वितीय दृश्य में हम रंगमंच पर संवाहक, द्यूताध्यक्ष, माथुर तथा एक जुआरी को एक साथ देखते हैं। उनके वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि संवाहक जुए में माथुर से पराजित हो गया है और उसे माथुर को दस सुवर्ण देने हैं। द्यतकार और माथुर

उसे पकड़ने के लिए उसका पीछा करते हैं। पहले तो वह एक देवी के मन्दिर में छिप जाता है। किन्तु अपने द्यूतप्रिय स्वभाव के कारण उन दोनों के वहीं खिलने पर स्वयं ही प्रकट हो जाता है। वे दोनों ही उसे मारते हैं। संवाहक त्रस्त होकर रक्षा की पुकार मचाता है। इसी बीच दर्दुरक वहाँ आता है। वह संवाहक को छुड़ाता है। माथुर और दर्दुरक में झगड़ा होता है। अवसर पाकर दर्दुरक माथुर की आंख में धूल झोंक देता है। माथुर आंखें मलने लगता है। दर्दुरक और संवाहक भाग जाते हैं।

संवाहक वहाँ से भागकर वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। वसन्तसेना को अपना परिचय देता है, परिचय के अन्तर्गत चारुदत्त का प्रसंग भो आता है जिसे सुनकर वसन्तसेना बड़ी प्रसन्न होती है। वह संवाहक से उसके भय का कारण पूछती है और रूपयों के बदले अपना कंकण चेटी द्वारा माथुर व द्यूतकार के पास पहुंचा देती है। वे दोनों संतुष्ट होकर चले जाते हैं।

अंक के अन्तिम भाग में कणपूरक वसन्तसेना को उसके मतवाले हाथी के उत्पात और परिव्राजक को बचाने के लिए अपने पराक्रम का वृत्तांत सुनाता है। साथ ही वह यह भो सूचना देता है कि उसके अद्भत साहस से मुग्ध होकर किसी व्यक्ति ने पुरस्कार के रूप में अपना उत्तरीय दिया है। वसन्तसेना उस पर 'चारुदत्त' का नाम देखकर प्रसन्न होती है तथा उसे ओढ़ लेती है। वह कणपूरक को अपने एक आभ्षण से पुरस्कृत करती है। इसके बाद वसन्तसेना तथा चेटी दोनों द्वार पर के आलिन्द से चढ़कर घर जाते हुए चारुदत्त को देखने लगती हैं। यहीं पर अंक की समाप्ति हो जाती है।

तृतीय अंक –

प्रस्तुत अंक में वसन्तसेना की दासी मदनिका का प्रेमी शर्विलक उसे दासता से मुक्त कराने के लिए चारुदत्त के यहाँ सेंध लगाता है। अतः इस अंक का नामकरण संधिविच्छेद किया गया है।

अंक के प्रारंभ में चारुदत्त का चेट मंच पर आता है। मध्यरात्रि का समय है। अभो तक चारुदत्त घर नहीं लौटा है। अतः चेट चिन्तित है। इसी समय चारुदत्त और विदूषक मंच पर आते हैं। वे रेमिल के घर से गीत सुनकर लौटते हैं। ऐसा उनके वार्तालाप से ज्ञात होता है। घर पहुँचकर विदूषक चेट को पुकारता है। चेट के दरवाजा खोलने पर दोनों घर में प्रवेश करते हैं। रात को सुवर्ण भाण्ड की रक्षा का भार विदूषक पर होने के कारण चेट विदूषक को यह कहते हुए देता है कि "मैंने दिन भर इस आभ्षण भाण्ड की रक्षा की है अब रात को आपकी बारी है। इसके बाद चारुदत्त सो जाता है। विदूषक भो सुवर्ण भाण्ड हाथ में लिए हुए सो जाता है।

अंक के द्वितीय दृश्य में शर्विलक द्वारा सेंध लगाये जाने का वर्णन है। सेंध लगाने से पूर्व जो विभिन्न प्रकार की सेंधों तथा उन्हें तोड़ने की विभिन्न विधियों का वर्णन उसके सेंध संबंधी विस्तृत ज्ञान को द्योतित करता है। जनेऊ से नापकर वह सेंध फोड़ता है तथा भोतर प्रवेश करता है। प्रवेश करके घर के भोतर की स्थिति देखकर वह निराश होता है तथा वहाँ से जाने का विचार करता है। इसी बीच विदूषक स्वप्न देखता है कि घर में चोर ने सेंध लगाई है। अतः वह भयभोत होकर स्वप्न में ही चारुदत्त को पुकार कर स्वर्ण भाण्ड देता है। चारुदत्त गहरो निद्रा में है, अतः उसे इस बात का बिलकुल भो आभास नहीं होता। शर्विलक आगे बढ़कर उसके हाथ से आभ्षण ले लेता है तथा बड़ी सावधानी से घर से बाहर निकल जाता है।

प्रातःकाल होने पर जब चारुदत्त को चोरी होने का पता लगता है तो वह सेंध को देखकर उसके आकार की प्रशंसा करता है। उसे इस बात की प्रसन्नता है कि चोर उसके घर से निराश नहीं गया। परन्तु उसे इस बात की भो चिन्ता है कि लोग चोरी के वृत्तान्त पर विश्वास न करके उसे ही बदनाम करेंगे। इसी बीच चारुदत्त की भार्या धूता को यह वृत्तान्त ज्ञात होता है। वह मैत्रेय को बुलाकर अपने नैहर की बची एक बहुमूल्य रत्नावली उसे देती

है और स्पष्ट न कहते हुए यह संकेत देती है कि चारुदत्त उस रत्नावली का यथोचित उपयोग करे। चारुदत्त पत्नी के उस उदारतापूर्ण त्याग से अभिभूत हो जाता है। वह अपने मित्र मैत्रेय को आदेश देता है कि वह वसन्तसेना के घर जाकर वह रत्नावली उसे दे आये तथा यह कह दे कि चारूदत्त भमवश उसके सुवर्णालंकार को जुए में हार गया है। अतः वह यह रत्नावली बदले में स्वीकार करे। इसके बाद वह वर्धमान को सेंध बन्द करने का आदेश देकर स्वयं सन्ध्योपासना करने चला जाता है।

चतुर्थ अंक –

इस अंक का शीर्षक ''मदनिका–शर्विलक'' है। इसमें दोनों के प्रणय का चित्रण हुआ है। शर्विलक चुराये गये आभूषणों को मदनिका को देता है। मदनिका उन आभूषणों को चतुराई से वसन्तसेना को दिला देती है। परन्तु वसन्तसेना सम्पूर्ण रहस्य को समझ जाती है। वह अतीव उदारतापूर्ण भाव से शर्विलक से अनुरोध करती है कि वह मदनिका को पत्नी भाव से ग्रहण करें क्योंकि आर्य चारुदत्त का निर्देश है कि जो कोई उस आभूषण को लाकर दे उसे मदनिका समर्पित कर दी जाए। अन्ततः वह दोनों को अपनी गाड़ी में बैठाकर विदा करती है।

अंक के अन्तिम दृश्य में विदूषक मैत्रेय का वसन्तसेना के यहाँ पहुँचना व उसके भव्य प्रासाद को देखकर आश्चर्यान्वित होना प्रस्तुत किया गया है। तदुपरान्त वसन्तसेना विदूषक का स्वागत करती है। सामान्य कुशल प्रश्न के बाद विदूषक चारुदत्त द्वारा कहे गये सुवर्ण भाण्ड के जुए में हारने संबंधित संदेश सुनाता है तथा उसके बदले में भजी गई रत्नावली उसे प्रदान करता है। वसन्तसेना उसे लेकर मैत्रेय को चारुदत्त से मिलने संबंधित संदेश के साथ विदा करती है।

पंचम अंक –

इस अंक का शीर्षक ''दुर्दिन'' है। इस अंक में वर्षा का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। धनान्धकार एवं वर्षा के वातावरण में वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुंचती है। चारुदत्त वसन्तसेना का स्वागत करता है तथा वस्त्रों के भोग जाने से उसके लिए अन्य वस्त्रों की व्यवस्था करवाता है। विदूषक वसन्तसेना से आगमन का कारण पूछता है। वसन्तसेना की चेटी कहती है ''हमारी मालकिन यह पूछने आई है कि आपकी रत्नावली का मूल्य क्या है? वह उसे अपनी समझ कर जुए में हार गई है।'' यह कह कर वह स्वर्ण भाण्ड प्रदान करती है। चारुदत्त और विदूषक उसे देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। बाद में चेटी सुवर्ण भाण्ड की प्राप्ति का सम्पूर्ण वृत्तान्त विदूषक को कान में कह देती है। विदूषक चारुदत्त को सब बता देता है। समस्त वातावरण हर्ष एवं आमोद–प्रमोद से पूर्ण हो जाता है। विदूषक प्रेमी–प्रेमिका से थोड़ा विनोद करता है तथा वर्षा को देखते हुए उन्हें घर के भोतर चले जाने का संकेत प्रदान करता है। चारुदत्त मौसम की उद्दीपकता का कथन करता है जिस पर वसन्तसेना श्रृंगार भाव से उसका आलिंगन करती है। चारुदत्त के प्रस्ताव पर वसन्तसेना उसके साथ घर में प्रवेश करती है तथा सम्पूर्ण रात्रि वहीं व्यतीत करती है। बाहर धारासार वृष्टि होती रहती है।

उक्त अंक में चूंकि वसन्तसेना ने चारुदत्त के घर पर प्रतिकूल भोतिक प्राकृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत भो अभिसार किया है, इस कारण अंक की 'दुर्दिन' संज्ञा पड़ी है।

षष्ठ अंक –

इस अंक का नामकरण 'प्रहरण–विपर्यय' रखा गया है। इस अंक में वसन्तसेना भूल से चारुदत्त की गाड़ी में न बैठकर शकार की गाड़ी में बैठ जाती है। उधर कारागार से भागा हुआ आर्यक घूमता हुआ वहाँ आता है। वह वसन्तसेना के द्वार पर खड़ी हुई चारुदत्त की गाड़ी में बैठ जाता है। वर्धमानक बेड़ियों की झंकार से समझता है कि वसन्तसेना बैठ गई है और गाड़ी को हांक देता है।

इसी अंक में इस प्रकरण के शीर्षक रहस्य भो सन्निहित है। चारुदत्त का पुत्र रोहसेन पड़ौसी बच्चे के पास स्वर्ण निर्मित गाड़ी देखकर उसके लिए आग्रह करता है। वसन्तसेना को जब इसका पता चलता है तो वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर वह रोहसेन की मिट्टी की गाड़ी को अपने सोने के आभ्षणों से भर देती है तथा उनसे स्वर्ण शकटिका बनाने के लिए कहती है। इसे बाद बालक को लेकर मदनिका चली जाती है।

प्रस्तुत अंक में शुरू से लेकर अंत तक गाड़ियों की अदला–बदली का वर्णन है। अतः इस अंक का नामकरण लेखक ने 'प्रवहण – विपर्यय' किया है।

सप्तम अंक –

अंक के प्रारंभ में चारुदत्त और विदूषक जीर्णोद्यान की शोभा का अवलोकन करते दिखाई पड़ते हैं। चारुदत्त वसन्तसेना के आगमन मे विलम्ब हो जाने से कुछ चिन्तित सा दिखाई दे रहा है। उसी समय वर्धमानक गाड़ी को लेकर पहुंचता है। गाड़ी को देखकर दोनों प्रसन्न होते हैं। चारुदत्त के अनुरोध पर वसन्तसेना को उतारने के लिए विदूषक पर्दा हटाकर देखता है तो कह उठता है – ''यहाँ तो वसन्तसेना नहीं, वसन्तसेन है।'' चारुदत्त इस कथन पर विश्वास न करके एक हंसी मात्र समझता है तथा स्वयं गाड़ी में देखता है। आर्यक देखते ही करबद्ध प्रार्थना करता हुआ कहता है कि ''मैं गोपाल शरणागत हूँ, मैं गोपालपुत्र आर्यक हूँ।'' चारुदत्त अपने स्वभावानुसार उसे अभयदान देता है। उसके आदेश से वधमानक आर्यक के पैरों की लोह शृंखलाऐं काटता है। आर्यक उसकी गाड़ी पर चढ़कर आने के लिए क्षमा–याचना चाहता है। परन्तु चारुदत्त इसे अपना सौभाग्य समझता है तथा परामर्श देता है कि वह गाड़ी पर चढ़कर ही भागे जाए क्योंकि उस मार्ग पर राजपुरूष प्रायः भमण किया करते हैं। चारुदत्त और विदूषक भो उसे विदा करके राजभय से शीघ्र वहाँ से चले जाते हैं।

चूँकि अंक में आर्यक सुरक्षित चारुदत्त के पास जीर्णोद्यान में पहुंच जाता है, अतः इसकी संज्ञा 'आर्यकोपहरण' पड़ी है।

अष्टम अंक –

षष्ठ अंक में घटित प्रवहण–विपर्यय के परिणामों में से एक सप्तम अक में घटित हुआ और दूसरा अष्टम अंक में।

इस अंक का शीर्षक 'वसन्तसेना मोटन' है। वसन्तसेना शकार की गाड़ी में भ्ल से बैठ गई थी, अतः वह चारुदत्त के स्थान पर शकार के समीप पहुंचत जाती है। वहां शकार उसके समक्ष प्रणय प्रस्ताव रखता है। वसन्तसेना उस प्रस्ताव को ठुकरा देती है तब वह बलात् उसका गला घोंटकर पत्तों में छिपा देता है। इस बात का जब विट को पता चलता है तो वह बहुत दुःखी होता है। वह शकार को उस उज्जयिनी की लक्ष्मी की हत्या करने के लिए भ्रिशः धिक्कारता है। शकार विट को स्वर्ण इत्यादि का लालच देकर वसन्तसेना की हत्या का आरोप किसी अन्य पर प्रमाणित करवाना चाहता है। विट इससे स्पष्ट इंकार कर देता है। इस पर शकार उस हत्या का आरोप उसी पर मढ़ता है तथा राजा के सामने प्रस्तुत होने की धमकी देता है। विट शकार का साथ छोड़कर तथा उसे डरा–धमकाकर शर्विलक आदि से मिलने चला जाता है।

अंक के अंतिम दश्य में भिक्षु प्रवेश करता है। वह अपना चीवर फैलाने के लिए स्थान ढूंढता है। इतने में वसन्तसेना हाथ दिखलाती है। भिक्षु पत्ते हटाकर वसन्तसेना को पहचानता है। वसन्तसेना लता का सहारा लेकर उठ खड़ी होती है। भिक्षु वसन्तसेना को विश्राम कराने के लिए विहार ले जाता है।

नवम अंक –

इस अंक का नामकरण 'व्यवहार' रखा गया है। इसमें न्यायालय का दृश्य है जिसमें शकार चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लगाता है। शकार अधिकरण मण्डप में प्रवेश

कर यह सूचना देता है कि पुष्पकरण्डक उद्यान में किसी ने धन के लोभ में वसन्तसेना को बाहुपाश–बलात्कार से मार डाला है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि उसे कैसे जान पड़ा कि धन के लिए उसकी हत्या की गई है। शकार उत्तर देता है ''आभ्षण विहीन होने से, गले में हार सूत्रावली नहीं होने से तथा प्रत्येक स्थल का गहना उतरा होने से।'' इस पर यह जानने के लिए कि वसन्तसेना कहाँ व किसके साथ गई थी? अधिकरणिक वसन्तसेना की माँ को बुलवाते हैं। वसन्तसेना की माँ आकर कहती है कि वह आर्य चारुदत्त के पास अपने यौवन का सुख प्राप्त करने गई है।

इस पर चारुदत्त को न्यायालय में बुलाया जाता है। न्यायाधीश प्रथम दृष्ट्या मन में विचार करता है कि ऐसे भव्य स्वरूप वाला व्यक्ति ऐसे जघन्य कृत्य का अपराधी नहीं हो सकता। वह उससे प्रश्न करता है कि क्या वसन्तसेना उसकी प्रेमिका है? चारूदत्त सर्वप्रथम कुछ लज्जित सा अनुभव करता है तथा परोक्ष रीति से स्वीकार करते हुए उत्तर देता है कि ''इस विषय में केवल यौवन अपराधी है चरित्र नहीं।'' न्यायाधीश स्पष्टरूपेण कहने को बाध्य करता है। ऐसी स्थिति में शकार को भो कुछ बोलने का अवसर मिलता है तथा वह चारुदत्त को हत्यारा आदि कहकर संबोधित करता है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि अब वसन्तसेना कहाँ है? चारुदत्त बताता है कि वह अपने घर गई है। परन्तु वह बतलान में अपनी असमर्थता प्रकट करता है कि वह पैदल गई या गाड़ी में। शकार न्यायाधीश पर यह आरोप लगाता है कि वह चारुदत्त का पक्ष ले रहा है। इस पर न्यायाधीश उसकी यह कहते हुए भर्त्सना करता है कि चारुदत्त जैसे दानशील व्यक्ति पर उसने असत्य अभियोग लगाया है।

धीरे–धीरे अभियोग की सुनवाई का क्रम आगे बढ़ता है तथा दैव दुर्विपाक से सभो साक्ष्य चारुदत्त के विपक्ष में जाते हुए दिखाई देते हैं और न्यायाधीशों के समझ अभियोग सिद्धि के अलावा कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। परिणामस्वरूप चारुदत्त को मृत्युदण्ड देने का निर्देश राजा द्वारा दिया जाता है। चारुदत्त पालक की इस आज्ञा की भर्त्सना करता हुआ मैत्रेय से अनुरोध करता है कि वह घर जाकर उसकी माता को उसका अभिवादन सुना दे तथा रोहसेन को भो मिला दे।

चारुदत्त पर अभियोग लगाये जाने के कारण प्रस्तुत अंक की अभिधा 'व्यवहार' पड़ी है। ''व्यवहार का अर्थ है अभियोग या मुकदमा।''

दशम अंक –

अन्तिम अंक ''संहार'' में परिस्थितियाँ एकदम परिवर्तित होती हैं। अंक के प्रारंभ में चारूदत्त को वध स्थान ले जाते हुए चाण्डाल दिखाई देते हैं। चारुदत्त के सारे शरीर पर लाल चन्दन से छापे मारे गये हैं तथा तिल, चावल एवं कुंकुम का लेप लगा है जिससे वह वध्यपुरूष तुल्य लगता है। श्मशान में ले जाते हुए उसे सम्पूर्ण उज्जयिनी नगर के लोग विशेषतः स्त्रियाँ देख–देखकर रोती हैं। विदूषक चारुदत्त पुत्र रोहसेन को लेकर वहाँ आता है। विदूषक व रोहसेन चाण्डालों से चारुदत्त को छोड़ने की प्रार्थना करते हैं तथा चारुदत्त के स्थान पर अपना वध करने का अनुरोध करते हैं। चाण्डाल बालक के पितृ–प्रेम की सराहना करते हैं। कुछ देर बाद वे दूसरे घोषणा स्थल पर पहुंचते हैं तथा घोषणा दुहराते हैं। घोषणा को सुनकर शकार के महल में बंधा स्थावरक चिल्लाकर कहता है कि वसन्तसेना को चारुदत्त ने नहीं शकार ने मारा है। परन्तु उसकी बात किसी के कान तक नहीं पहुंचती।

तीसरे घोषणा स्थल पर शकार के निर्देश पर चाण्डाल पीटने का भय दिखाकर चारुदत्त से यह घोषणा कराते हैं – ''हे नगरवासियो! मैंने ही वसन्तसेना को मारा है।'' एक चाण्डाल कहता है कि ''वध्यपुरूष को सहसा मारना ठीक नहीं क्योंकि अनेक दशाओं में उनके प्राण बच जाते हैं और इन अवस्थाओं में एक अवस्था राज्य परिवर्तन की भो होती है जब सभो बंदी मुक्त कर दिये जाते हैं। राज्य परिवर्तन की बात सुनकर शकार घबराता है तथा चाण्डालों से चारुदत्त को शीघ्र मारने के लिए कहता है।

इसके बाद अकस्मात् परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं। जब चाण्डाल चारुदत्त पर प्रहार करने ही वाले थे उसी समय बौद्ध भिक्षु वसन्तसेना के साथ वहाँ उपस्थित हो जाता है। उसे जीवित देखकर वे उसे मुक्त कर देते हैं। उसी समय उधर से राज्य सत्ता का परिवर्तन होता है। पालक को मारकर आर्यक राजा बनता है। चारुदत्त के स्थान पर शकार को फांसी की सजा का आदेश होता है। इसी समय कुछ लोग शकार को पकड़ कर वहाँ लाते हैं। शकार चारुदत्त के चरणों में गिर कर प्राण रक्षा की भोख मांगता है। चारुदत्त उसे अभयदान देता है।

अंक का अन्तिम दृश्य धूता के चितारोहण तथा वसन्तसेना के साथ उसके मिलन से संबंध रखता है। उक्त प्रसंग अधिकांश विद्वान् प्रक्षिप्त बतलाते हैं। शर्विलक इस आनन्दमय अवसर पर वसन्तसेना को आर्यक के नाम पर वधू रूप में चारुदत्त को सौंपता है तथा उसका घूंघट खींच देता है। वसन्तसेना इस अनुग्रह से अपने को कृतार्थ समझती है। चारुदत्त की इच्छानुसार भिक्षु संवाहक पृथ्वी पर सब विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। दोनों चाण्डाल सब चाण्डालों के अधिपति बना दिये जाते हैं। चन्दनक को पृथ्वी दण्डपालक का पद दिया जाता है। शकार का भो अधिकार अस्थायी रूप से पूर्ववत् बना रहने दिया जाता है। इसी सानन्द वातावरण में नाटक भरत वाक्य के साथ समाप्त हो जाता है।

18.5 कथावस्तु–समीक्षा –

शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' सम्पूर्ण नाट्य–साहित्य में एक अद्वितीय प्रकरण है। यह न केवल कथानक की दृष्टि से अपितु चरित्र–चित्रण, कथोपथन, भाषा–शैली एवं रस–योजना की दृष्टि से भो संस्कृत 'नाट्य–परम्परा' में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सभो भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने एक स्वर से इस प्रकरण की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। उनके मतानुसार यह अखिल संस्कृत नाट्य साहित्य में अपने सदृश अकेला है।

1. संस्कृत नाट्य शास्त्र के विधान के अनुरूप प्रकरण श्रेणी का रुपक होने से इसकी कथावस्तु उत्पाद्य एवं कवि कल्पित है। प्रकरण का प्रारंभ शूद्रक ने नान्दी पाठ से ही किया है। यह नान्दी पाठ स्त्रग्धरा तथा अनुष्टुप् छन्दों में रचित दो श्लोकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। नान्दी पाठ प्रायः तीन प्रकार का होता है – आशीर्वादात्मक, नमस्क्रियात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। प्रस्तुत नाटक की नान्दी का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि उक्त प्रकरण की नान्दी वस्तुनिर्देशात्मक है। प्रस्तुत नान्दी के नीलकण्ठ (शंकर) और गौरी (पार्वती) नाटक के नायक (चारुदत्त) व नायिका (वसन्तसेना) के सूचक हैं। उन दोनों के मिलन का संकेत हमें नान्दी पाठ के दूसर श्लोक में प्राप्त होता है। श्लोक में प्रयुक्त बादल (श्यामाम्बुद) तथा बिजली (विद्युल्लेखा)। पांचवें अंक में वर्णित दुर्दिन के सूचक कहे गये हैं। श्यामल तथा गौर–वर्ण क्रमशः दुष्टों तथा सज्जनों द्वारा अपनाई गई जीवन पद्धतियों के व्यंजक माने गये हैं। प्रकरण में शकार दुष्टों का अगगण्य व चारुदत्त सज्जनों के मुखिया के रूप में हैं।
2. शास्त्रीय विधानानुसार 'नान्दी' के बाद प्रस्तावना या आमुख का विधान है। तद्नुकूल ही 'मृच्छकटिकम्' में भो शूद्रक ने प्रस्तावना रखी है। प्रस्तावना के द्वारा दर्शकों को नाटक के रचयिता व कृति के विषय में संक्षिप्त में परिचय प्रदान किया जाता है। नाटक में आने वाले पात्रों व घटनाओं का भो कभो–कभो संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना भो इस दृष्टि से सार्थक हैं, क्योंकि वहाँ पर न केवल लेखक का परिचय ही दिया गया है अपितु मुख्य कथानक तथा उससे संबंधित अन्य उप–कथाओं का भो हमें संकेत मिल जाता है। चारुदत्त व वसन्तसेना अर्थात् नायक व नायिका की प्रेम कहानी का जिस विधि से परिचय दिया गया है वह आधुनिक चलचित्रों की विधि से अत्यधिक साम्य रखती है।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में प्रस्तावना के पांच भद किये हैं। यथा–उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवगलित। 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना को कुछ पण्डितों ने 'प्रवर्तक' जाति का बताया है तथा अपने मत की पुष्टि हेतु 'उत्तररामचरित' की प्रस्तावना को दृष्टान्त रूप में रखा है। परन्तु इस मत से अन्य अनेक विद्वान् सहमत नहीं हैं। उन्होंने 'मृच्छकटिकम्' को प्रस्तावना को 'प्रयोगातिशय' जाति का माना है। आचार्य धनञ्जय ने 'दशरूपक' में जो प्रयोगातिशय प्रस्तावना का लक्षण किया है तथा जिसके आधार पर उन्होंने 'शाकुन्तलम्' की प्रस्तावना को 'प्रयोगातिशय' माना है। वैसा ही प्रयोग आलोच्य प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' में भो सूत्रधार द्वारा मैत्रेय की सूचना देते समय किया है।

अमेरिकन आलोचक हेनरी वेल्स ने अपनी पुस्तक में संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना पर विचार किया है तथा उनके महत्त्व पर प्रकाश डाला है। उन्होंने संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना का एक प्रमुख उद्देश्य यह बताते हुए कि प्रस्तावना लौकिक संसार से हमारी चेतना का रंगमचीय संसार में प्रवर्तित कर देने में सहयोग देती है 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना की प्रशंसा की है। उनका कथन है कि ''प्रस्तुत नाटक के नाना रूप एवं पार्श्व हैं जैसे उसके चरित्र नाना एवं नाना जाति के हैं। धर्म एवं लोक, आदर्श एवं यथार्थ, गांभोर्य एवं परिहास इन समस्त परस्पर विरोधी तत्त्वों का मिलन इसमें सम्पन्न हुआ है। प्रस्तावना में नाटक की इस नाना रूपिणी आत्मा का सुन्दर प्रतिफलन दृष्टिगोचर होता है।''

3. संस्कृत नाट्य–सहित्य में प्रायः अधिकांश नाटकों की कथावस्तु राज्य परिवार एवं उच्च स्तरीय परिवारों से संबंध रखने वाली है। परन्तु आलोच्य प्रकरण की कथावस्तु मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग से संबंधित है। यह एक यथार्थवादी प्रकरण है। दरिद्रता का जैसा सामाजिक चित्रण इस प्रकरण में किया गया है वैसा अन्यत्र दुष्प्राप्य है। दरिद्रता के संदभ में चारूदत्त का यह कथन मर्मान्तक है –

''दारिद्रयात्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।

अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।''

4. 'मृच्छकटिकम्' की कथावस्तु की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उसमे पाये जाने वाला घटना वैविध्य है। यह घटना वैविध्य अद्भत एवं अन्यत्र दुष्प्राप्य है। घटनाओं की विविधता का ज्ञान प्रकरण के दस अंकों के शीर्षकों से ज्ञात हो जाता है। इसमें एक ओर द्यूतकारों का सजीव चित्रण है तो दूसरी ओर संधिविच्छेदन का यथार्थ वर्णन है। एक और गाड़ियों की अदला–बदली का दृश्य है तो दूसरी ओर वसन्तसेना का मोटन एवं न्यायालय का दृश्य है। इस प्रकरण का प्रत्येक अंक भिन्न–भिन्न घटनाओं से युक्त है। घटनायें भो इस प्रकार की है जो दैनिक जीवन से संबंधित हैं। डॉ. राइडर का कथन यहां उल्लेखनीय है –

"From farce to tragedy, from satire to pathos runs the story with a breadth Truly Shakesperian."

5. डॉ. राइडर ने नाटक के वस्तु संघटन तथा संविधान शिल्प की समीक्षा करते हुए एक दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं। सर्वप्रथम आपत्ति जो की गई है वह यह है कि ''नाटक बहुत लम्बा हो गया है जिससे वस्तु निर्माण में शैथिल्य आ गया है।'' इसमें कोई संदेह नहीं कि नाटक की लम्बाई अवश्य अधिक है परन्तु प्रकरण होने से यह अधिक खटकती नहीं क्योंकि उसमें नानाविध चित्रों तथा पटलों का समावेश होना नियोजित था। इसके अतिरिक्त कथानक की यथार्थता एवं सामाजिकता और राजनीतिक कथानक का उसके साथ सम्मिश्रण सभो उसे विस्तृत बनाने में सहयोग देते हैं। जहाँ तक वस्तु निर्माण में शैथिल्य का संबंध है, सभो जगह ऐसी स्थिति नहीं है, अपितु जहाँ पर पुनरुक्तियों से विस्तार अनाहूत एवं अनावश्यक हो गया है वहाँ पर ही शिथिलता आ गई है।

यदि यह कहा जाये कि एक बैठक में इसका अभिनय समाप्त नहीं हो सकता तथा दो बैठकें आवश्यक होंगी तो कोई नवीन बात नहीं क्योंकि विश्व की विभिन्न भाषाओं में स्थित अधिकतर नाटकों की भो ऐसी ही स्थिति है। प्रायः अधिकतर नाटक जिन्हें कि रंगमंच पर प्रदर्शित करना होता है, उनमें कांट–छांट कर उन्हें उसके योग्य बनाया जाता है, वैसा यदि हम 'मृच्छकटिकम्' में भो करें तो इसका भो एक ही बैठक में सफल प्रदर्शन किया जा सकता है।

डॉ. राइडर ने वस्तु निर्माण में शैथिल्य के साथ–साथ द्वितीय टिप्पणी यह भो की है कि ''दूसरे से पांचवें अंक तक नाटक का मुख्य कार्य रुकता चला जाता है और हम लगभग यह भ्‌ल से जाते हैं कि चारुदत्त एवं वसन्तसेना का प्रणय ही मूल कथानक है। .... यद्यपि दूसरा अंक चातुर्यपूर्ण है, तथापि मुख्य कथा अथवा आभ्‌षणों वाली कहानी से इसका कोई वास्तवित संबंध नहीं है।''

डॉ. राइडर की उक्त आपत्ति हमारी दृष्टि में उचित प्रतीत नहीं होती। द्वितीय से पंचम अंक तक की कथावस्तु ने न केवल नाटक में यथार्थता व तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को हमारे सम्मुख रखा है अपितु नायक व नायिका के प्रेम की श्रृंखला को ओर भो मजबूत बनाने का कार्य किया है। उदाहरणार्थ–द्वितीय अंक की घटना ने न केवल जुआरियों के दुर्व्यसन का सजीव चित्र अंकित करके नाटक की यथार्थवादी भ्‌मिका की आधारशिला रखी है अपितु वसन्तसेना को चारुदत्त से प्रणय करने हेतु कटिबद्ध भो करने का कार्य किया है। अतः डॉ. राइडर व डॉ. भाट द्वारा उठाई गई आपत्तियां उचित प्रतीत नहीं होती।

डॉ. राइडर की तृतीय टिप्पणी यह है कि 'मृच्छकटिकम्' में दो नाटकों की सामग्री सन्निविष्ट है। पहले अंक का अधिकांश भाग छठवें से दसवें अंक तक मिलाकर एक संगत एवं चातुरीपूर्ण कथानक बन सकता है जबकि पहले अंक के शेषांक को तीसरे से पांचवे अंक तक के साथ मिलाकर एक हल्के ढंग से मनोरंजक सुखान्तकी की रचना की जा सकती है। इस प्रकार राइडर ने एक ओर शकार के कारण उत्पन्न होने वाली उलझनों को मिलाकर जटिल व संघर्षमय नाटक बनाने का तथा दूसरी ओर चारुदत्त व वसन्तसेना के प्रणय तथा मिलनोपयोग से संबंधित एक मनोरंजक नाटक की रचना का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य दृष्टि से राइडर का उक्त सुझाव संगत जान पडता है तथा इससे उनके द्वारा उठाई गई ठहराव संबंधित पहली आपत्ति का भो निराकरण हो जाता है परन्तु नाटक में वह उतार–चढ़ाव तथा असमंजस की स्थिति जो समग्र रूप में है विभाजित करने पर कदापि नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त नाटककार का जो प्रमुख प्रयोजन एक वेश्या को कुलवधू का स्थान दिलाना तथा शकार की दुष्टतापूर्ण प्रतिस्पर्धा को चरम–बिन्दु तक पहुंचाकर चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रणय परिपाक को शारीरिक धरातल से उठाकर गहरे भावात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करना जहाँ वसन्तसेना केवल पूर्णकामा प्रेयसी न रहे, अपितु वैध वधू का पद प्राप्त करले। पांचवें अंक तक उभार में नहीं आ सकता था। शकार के संघर्ष के बिना चारुदत्त व वसन्तसेना के प्रेम में वह निखार नहीं आ पाता जो उसके रहते आ पाया है।

जहाँ तक दो नाटकों की सामग्री के सन्निविष्ट होने का संबंध है वह नाटक की लम्बाई को देखते हुए ठीक माना जा सकता है जैसा कि एक अन्य अमेरिकन आलोचक हेनरी वेल्स ने भो माना है :–

(a) "Histroically speaking, it comes extremely close to being two plays."

(b) To be sure, it is very long. In fact it is the length of two plays and was presumably compounded of two."

परन्तु विभाजन की स्थिति को नकारते हुए आपने ठीक ही लिखा है –

''सम्पूर्ण नाटक अपने घटक अवयवों के योगफल से अधिक एवं सुसंगतिपूर्ण रचना है। तब यद्यपि पहला भाग दूसरे भाग की निरपेक्षता में भो रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक में उत्पन्न होने वाला प्रभाव पृथक्शः नहीं समग्रतः विभिन्न दृश्यों के संयोग रूप में परिणभित होता है। अतः इन दोनों भागों का संबंध किसी प्रतिमा और उसके आधार का नहीं है, अपितु यह क्रमशः विकसित होने वाले किसी जीव पिण्ड का संबंध है। तने से शाखाएँ उगी हैं, और उनमें फिर पत्तियों का प्रचुर प्रादुर्भाव हो गया है जो अपनी समृद्धि में इसे विस्मय में डाल देता है।''

इस प्रकार स्थापत्यकला व वस्तु विधान पर विभिन्न मत देखने को मिलते हैं। परन्तु इन मतों की विभिन्नता के मूल में प्रमुख कारण दोनों देशों की नाट्य कला के आदर्श हैं। पाश्चात्य नाट्यकला में त्रिविध अन्वितियों को प्रमुख महत्व दिया गया है तथा वहाँ के नाटक यूनानी नाट्यकला की त्रिविध अन्वितियों के आधार पर निर्मित एवं सुगठित एवं सुविन्यस्त रचना है, इसके विपरीत संस्कृत नाटक काव्य का अंग होने के कारण उसमें प्रगीतात्मक सौन्दर्य, प्रकृति–चित्रण व शिल्प शैली के लालित्य आदि के चित्रण स्वभावतः ही किये जाते हैं जिससे कथानक में विस्तार आ जाता है। इसके साथ यह भो स्मरणीय है कि 'मृच्छकटिकम्' का कथानक केवल एक विषय के प्रतिपादनार्थ नियोजित नहीं हुआ है। उसका प्रतिपाद्य बहुतवचनात्मक है। जैसा कि प्रस्तावना में स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। अतएव डॉ. तिवारी का सुझाव है कि इसी संकुल बहुवचनात्मक प्रयोजन की पृष्ठभ्मि में उसके स्थापत्य कला को परीक्षा होनी चाहिए और तब 'मृच्छकटिकम्' का वस्तु विधान प्रभावकारी सिद्ध होगा। परन्तु डॉ. राइडर ने पाश्चात्य नाट्यकला के आदर्श से प्रभावित होकर उसकी समीक्षा की जिसके अनुसार उसकी टिप्पणी उचित कही जा सकती हैं।

18.6 पारिभाषिक शब्दावली

शूद्रक – इस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' के कर्ता शूद्रक ही हैं यह सिद्ध हो जाने पर भी एक प्रश्न जो और उत्पन्न होता है वह यह कि शूद्रक सामान्य कवि था या राजा ? क्या उसने स्वयं ने ही यह लिखा या उसकी सभा के किसी कवि ने यह नाटक लिखकर उसके नाम से प्रसिद्ध कर दिया? यह प्रश्न इसलिए उत्पन्न होता है कि भारत में उक्त दोनों ही प्रकार के राजा हुये हैं। एक ओर ऐसे राजा हुये हैं जिन्होंने स्वयं काव्य की रचना करके साहित्य की अभिवृद्धि की है तथा दूसरी ओर ऐसे भी राजा हुये हैं जो कि स्वयं कवि न होकर मात्र कवियों के आश्रयदाता रहे हैं।

'मृच्छकटिकम् – दस अंकों का एक प्रकरण है, प्रस्तुत प्रकरण की कथावस्तु जनश्रुति अथवा लोककथा पर आधारित प्रतीत होती है। इसमें दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना के प्रणय की कथा विभिन्न सामाजिक मोडों के साथ वर्णित हुई है।

''द्यूतकर–संवाहक'' – द्वितीय अंक की अभिधा ''द्यूतकर–संवाहक'' अंक अर्थात् जुआरी संवाहक अंक है। इस अंक में एक नये प्रमुख पात्र संवाहक की अवतारणा कराई गई है, जिसने नाटकीय वस्तु–संघर्ष के समाधान में महत्त्व की भूमिका सम्पन की है।

''दुर्दिन'' – इस अंक का शीर्षक ''दुर्दिन'' है। इस अंक में वर्षा का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

'व्यवहार' – इस अंक का नामकरण 'व्यवहार' रखा गया है। इसमें न्यायालय का दृश्य है जिसमें शकार चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लगाता है।

18.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'मृच्छकटिकम्' का रचयिता आप किसे मानते हैं? क्या वह शूद्रक था? (उत्तर सीमा–200 शब्द)
2. शूद्रक कौन था? राजा था अथवा कवि, ब्राह्मण था या क्षत्रिय था या शूद्र था? (उत्तर सीमा–400 शब्द)
3. शूद्रक के स्थितिकाल पर एक लेख लिखिये । (उत्तर सीमा–500 शब्द)
4. 'मच्छकटिकम्' की कथावस्तु अंकानुसार संक्षेप में लिखिये। (उत्तर सीमा–500 शब्द)
5. 'मृच्छकटिकम्' की कथावस्तु की समीक्षा कीजिये । (उत्तर सीमा–500 शब्द)

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिये उपभाग 18.2, 18.2.1
2. देखिये उपभाग 18.2.1, 18.2.2
3. देखिये उपभाग 18.3, 18.3.1, 18.3.2, 18.3.3
4. देखिये उपभाग 18.4, 18.4.1
5. देखिये उपभाग 18.5.1

18.8 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने मृच्छकटिकम की सामान्य जानकारी प्राप्त की । शुदक में व्यक्तित्व के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त की । शुदक का का काल एवं व्यक्ति निर्धारण पर विशद चर्चा का ज्ञान प्राप्त हुआ । मृच्छकटिकम की कथावस्तु एवं नादशास्त्रीय तत्वों का समावेश संबंधी ज्ञान का अवबोध भी उक्त इकाई में हुआ है।

18.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ,1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई– 19

मृच्छकटिकम् – अंक 1 से 5 (प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा –

19.0 उद्देश्य

एम. ए. संस्कृत विषय के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय से सम्बन्धित इस इकाई में महाकवि शुद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नाटक के प्रथम अंक से पञ्चम अंक तक के प्रमुख अंशों की संप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की गई है । इस इकाई को पढने के बाद आप मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक से लेकर पंचम अंक तक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रसंग सहित कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

संस्कृत के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय के अन्तर्गत महाकवि शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् नाटक का अध्ययन निर्धारित है । इस इकाई में मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक से लेकर पंचम अंक तक के प्रमुख अंशों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। व्याख्या के साथ में प्रस्तुत श्लोक का प्रसंग भो लिखा गया है। विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यकतानुसार व्याख्या और अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक श्लोक में छन्द, अलंकार, प्रकृति–प्रत्यय आदि भो बतलाये गए है। श्लोक का अन्वय तथा आवश्यकतानुसार विशेष टिप्पणियों का समाहरण भो किया गया है।

19.2 अंकानुसार व्याख्या

अंक 1

1. **पर्यङ्कः–ग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो–,**
   रन्तः प्राणावरोधव्युपरत सकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य।
   आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या,
   शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलय–ब्रह्मलग्नः समाधिः।।1।।

अन्वय – पर्यङ्क–ग्रन्थि–बन्ध–द्विगुणित–भजगाश्लेष–संवीत–जानोः, अन्तः प्राणावरोध व्युपरत–सकल–ज्ञान–रुद्धेन्द्रियस्य, तत्वदृष्ट्या आत्मनि, आत्मानम् एव व्यपगतकरणम् पश्यतः, शम्भोः शून्येक्षणघटिरतलय–ब्रह्मलग्नः समाधिः वः पातु।।1।।

कठिन शब्दार्थ – पर्यङ्क–ग्रन्थि–बन्ध–द्विगुणित–भजगाश्लेष–संवीत–जानोः (योगासन की) पर्यंक नामक ग्रन्थि (गांठ–पलथी) को बांधने के लिये, दोहरे किये गये, सर्प के लपेटने से बँधी हुयी जंघाओं वाले, अन्तः प्राणावरोध–व्युपरत–सकल–ज्ञान–रुद्धेन्द्रियस्य – (यौगिक प्रक्रिया के अर्न्तगत शरीर के) अन्दर ही प्राण आदि वायुओं के रोक देने के कारण, विषय

ज्ञान शून्य इन्द्रियों वाले, तत्वदृष्ट्या–सम्यक् दर्शन से, आत्मानम् – अपने को, परमात्मा को, व्यपगतकरणम् – व्यापार रहित रूप से, पश्यतः – देखते हुये, अनुभव करने वाले, शम्भोः – भगवान शिव की, शून्येक्षण घटितलयब्रह्मलग्नः – शून्य सृष्टिविमुख दृष्टि से किये गये प्रलय के समय ब्रह्म में लगी हुई, समाधिः – चित्त की एकाग्रता, वः – आप सामजिकों की, पातु – रक्षा करें।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण के प्रथम अंक से उद्धृत है। यह श्लोक कवि द्वारा अपनी कृति के प्रारंभ में विघ्न शान्ति के लिए मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाट्यशास्त्रीय भाषा में इसे नान्दी कहते हैं। इस श्लोक में अपने आराध्य भगवान् शिव से प्रार्थना की गई है कि समाधिलीन वे भगवान् शिव सभो सामाजिकों की (दर्शकों की) रक्षा करें –

व्याख्या – (योगासन की) पर्यंक नामक ग्रन्थि (आसन विशेष) को बांधने के लिये दोहराये गये सर्प के लपेटने से बंधी हुई जंघाओं वाले, (योगिक प्रक्रिया से शरीर के) भोतर ही प्राण आदि पांच वायुओं को रोक देने से विषय ज्ञान शून्य इन्द्रियों वाले, यथार्थ ज्ञान से अपने में परमात्मा का ही व्यापार (क्रिया–कलाप) शून्य रूप से अथवा कारण शून्य रूप से अनुभव करने वाले, (योगिराज भगवान्) शिव की निराकार का दर्शन अनुभव करने से होने वाली तल्लीनता के कारण ब्रह्म में लगी हुई समाधि–चित्त की एकाग्रता आप सभो सामाजिकों की रक्षा करे।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में आशीर्वादात्मक मंगलाचरण का विधान किया गया है।

(2) पर्यङ्क ग्रन्थि : इस शब्द के अनेक अर्थ किये गये हैं। वस्तुतः यह एक आसन विशेष है। जिसमें एक पैर की जांघ के उपर दूसरे पैर को रखकर दोनो को बांध दिया जाता है।

(3) प्राण : से तात्पर्य प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान पांच वायुओं से हैं।

(4) इस पद्य में स्रग्धरा छन्द है जिसका लक्षण है – म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

2. अवन्तिपुर्य्यां द्विजसार्थवाहो, युवादरिद्रः किल चारुदत्तः,
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना।।6।।

अन्वय – अवन्तिपुर्याम्, द्विजसार्थवाहः, दरिद्रः युवा चारुदत्तः (आसीत्) च, यस्य गुणनुरक्ता वसन्तशोभा इव वसन्तसेना (आसीत्) ।।6।।

कठिन शब्दार्थ – द्विजसार्थवाहः – ब्राह्मण व्यापारी अथवा ब्राह्मण श्रेष्ठ। गुणानुरक्ताः – गुणों के कारण प्रेम करने वाली । वसन्तशोभव – वसन्त ऋतु की सुन्दरता के समान।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्यपुस्तक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण से उद्धृत है। इस श्लोक में कवि ने सूत्राधर के माध्यम से ग्रन्थ की विषयवस्तु का वर्णन किया है। सूत्राधार का कथन है कि शूद्रक की इस कृति में–

व्याख्या – उज्जयिनी नगरी में व्यापारी ब्राह्मण (जो पहले धनाढ्य था परन्तु दानी होने के कारण बाद में) निर्धन, युवक चारुदत्त (रहा करता था) और जिसके (दया दाक्षिण्यादि) गुणों के कारण प्रेम करने वाली, वसन्त ऋतु की शोभा के समान (शोभा वाली) वसन्तसेना नामक गणिका (भो वहाँ रहती थी) ।

विशेष –

(1) अवन्तिपुर्य्याम् – प्राचीन काल में अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काची आदि सात पवित्र नगरियों में अवन्ती भो एक थी। इसी का नाम उज्जयिनी था। यह शिप्रा नदी के तट पर स्थित है। वर्तमान में जो उज्जैन नगर है, वह प्राचीन अवन्ती नगरी के स्थान से लगभग एक मील दूर है।

(2) द्विजसार्थवाहः – इस शब्द के अर्थ को लेकर विद्वानो में मतैक्य नहीं हैं। 'सार्थ' शब्द वणिक् समुदाय तथा समुदाय मात्रा दोनों अर्थों का वाचक है। इस आधर पर अलग–अलग अर्थों की कल्पना की गई है। 1. सार्थवाह – व्यापारी, द्वीज – ब्राह्मण, अर्थात् ब्राह्मण व्यापारी। 2. द्विजानाम् – ब्राह्मणानां सार्थम् – समूहम् वहति – अन्नदानादिना पालयति इति द्विज सार्थवाहः – ब्राह्मणपालन कर्ता। अनेक व्याख्याकारों ने चारुदत्त को व्यापारी ब्राह्मण माना है। डॉ. जयशंकर लाल त्रिपाठी की मान्यता है कि 'प्रस्तुत प्रकरण में उसके चरित्र की जो उदारता प्रदर्शित की गई है वह व्यापारी चारुदत्त में संभव नहीं है। अतः द्विजसार्थवाह का अर्थ ब्राह्मण समुदाय का नेता – 'द्विजश्रेष्ठ' यही मानना उचित है।

(3) वसन्तशोभेव वसन्तसेना :– वसन्तसेना की उपमा कवि ने वसन्त ऋतु की शोभा से की है। इससे वसन्तसेना की पुष्पों के समान प्रियता एवं कमनीयता व्यक्त की है।

(4) गुणानुरक्ता :– यह पद अति महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश वेश्या अर्थ लोलुप होती हैं। परन्तु गणिका वसन्तसेना चारुदत्त के निर्धन होने पर भो उसके व्यक्तित्व में जो अतुलनोय गुण हैं उनके कारण उससे प्रेम करती है। यह उसके चरित्र से प्रेम करती है। निर्धनता उसके प्रेम में बाध्क नहीं है।

(5) प्रस्तुत श्लोक में 'उपमा' अलंकार तथा 'उपेन्द्रवज्रा' छन्द है।

3. **शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्राम्।**
मूर्खस्य दिशः शून्याः, सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ।। 8।।

अन्वय – अपुत्रस्य गृहम् शून्यम्, यस्य सन्मित्रम् न अस्ति, (तस्य) चिरशून्यम् (अस्ति), मूर्खस्य दिशः शून्याः (सन्ति), दरिद्रस्य सर्वम् शून्यम् (भवति) ।।

कठिन शब्दार्थ – अपुत्रस्य – पुत्रविहीन का। सन्मित्राम् – अच्छा मित्र । चिरशून्यम् – चिरकाल अभिमत कार्य से रहित होता है। दरिद्रस्य – निर्धन का।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के प्रथम अंक से अवतरित है। सूत्रधर संगीतशाला को शून्य देखकर अपने विचार व्यक्त कर रहा है। उसके इस कथन में मानव जीवन में पुत्र, एवं श्रेष्ठ मित्र का महत्त्व व्यक्त हुआ है, साथ ही दरिद्रता को सबसे अधिक निन्दनीय बताया है।

व्याख्या – पुत्रहीन (सन्तानहीन) का घर सूना (होता है) जिसका (कोई भो) अच्छा मित्र नहीं होता है, उसका चिरकाल शून्य रहता है अर्थात् सर्वत्र उसके कार्यों में बाध पड़ती है, उसका कोई भो अभोष्ट कार्य नहीं, हो पाता है। मूर्ख की सभो दिशायें शून्य रहती हैं अर्थात् सब कुछ होने पर भो मूर्ख उसका उपयोग नहीं कर पाता है, अतः उसे सर्वत्र रिक्तता दिखाई देती है। इन सबकी तुलना में निर्धन की स्थिति सबसे अधिक दयनीय होती है, क्योंकि सारा संसार ही उसके लिए नहीं के समान होता है। कोई भो व्यक्ति न उसकी सुनता है, न उसका काय करता है, न उसका साथ देता है। अतः गरीब होना सबसे बड़ा अभिशाप है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में दरिद्रता की निन्दा करते हुये आगे निरूपित होने वाली चारुदत्त की दरिद्रता की भूमिका प्रस्तुत की गई है।

(2) इस पद्य में 'आर्या' छन्द है।

4. **सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते**
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।।10।।

अन्वय – घनान्धकारेषु, दीपदर्शनम्, इव दुःखानि अनुभय (पुरुषस्य) सुखम् हि, शोभते, तु, यः, नरः सुखात् दरिद्रतां याति, सः शरीरेण धृतः अपि, मृतः (सन्) जीवति।।10।।

कठिन–शब्दार्थ – घनान्धकारेषु – घोर अन्धकार में, दीपदर्शनम् – दीपक के दर्शन। अनुभ्य: – अनुभव करके। शोभते – शोभित होता है। दरिद्रताम् – निर्धनता को। याति – प्राप्त करता है। धृतः – धरण किया हुआ। मृतः – मरा हुआ।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त वर्तमान कालीन दरिद्रता के विषय में विचार कर अत्यन्त दुःखी हो रहा है। क्योकि पूर्व में उसने अत्यधिक दुखों का उपभोग किया है। वह अपने मित्र मैत्रेय से कहता है –

व्याख्या – गहन अन्धकार में दीपक के प्रकाश के समान दुःखों के अनुभव के बाद (मनुष्य के लिए) सुख शोभित होता है, सुख को अनुभ्ति अच्छी लगती है, परन्तु जो मनुष्य सुखों का उपभोग करके निर्धनता को प्राप्त होता है, वह शरीर द्वारा धरण किया गया भो मरे हुये के समान जीवित रहता है। निर्धन व्यक्ति जीवित होने पर भो मृत तुल्य होता है, उसका जीवन व्यर्थ होता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त अपनी वर्तमान दरिद्रता के विषय में विचार कर अत्यन्त दुःखी हो रहा है तथा शरीर धरण करने पर भो मरणतुल्य कष्ट का अनुभव करता है।

(2) इस पद्य में वंशस्थ छन्द है।

(3) यहाँ अप्रस्तुत व्यक्ति सामान्य के कथन से प्रस्तुत चारुदत्त रूप व्यक्ति विशेष का ज्ञान होता है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। 'घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्' यहाँ उपमा अलंकार है। 'मृतःस जीवति' यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

5. **एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं**
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्।।12।।

अन्वय – कालात्यये करिणः संशुष्कसान्द्रमदलेखम्, कपोलम् भमन्तः मधुकराः, इव अतिथयः, क्षीणार्थम्, इति, अस्मदीयम्, गृहम्, यत् परिवर्जयन्ति, एतत् तु माम् दहति ।।12।।

कठिन – शब्दार्थ – कालात्यये (मद जल प्रवाहित होने का) समय बीत जाने पर, करिणः – हाथी के, संशुष्कसान्द्रमदलेखम् – सुखी गाढी मद धारा वाले, कपोलम् – गण्डस्थल को। मधुकराः – भांरे। क्षीणार्थम् – धन से रहित, अस्मदीयम् – मेरे (चारुदत्त के) परिवर्जयन्ति – छोड़ देते हैं। दहति – जला रहा है, कष्ट दे रहा है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक से अवतरित है। चारुदत्त व उसके मित्र मैत्रेय के मध्य निर्धनता को लेकर वार्तालाप चल रहा है। चारुदत्त मैत्रेय से कहता है कि उसे धन नष्ट हो जाने का कोई कष्ट नहीं है। परन्तु धन के नष्ट होने पर जो लोगो के व्यवहार में अन्तर आ गया है, वह अधिक कष्ट पहुँचा रहा है।

व्याख्या – (मद जल बहने का) समय व्यतीत हो जाने पर हाथी की सूखी हुई गाढी मदजल धरा वाले गण्डस्थल को (पूर्व काल में उस पर) मँडराने वाले भौंरों के समान अतिथि लोग 'धनहीन है' ऐसा विचार कर मेरे घर को छोड़ देते हैं। (उसमें नहीं आते हैं) वही मुझे अत्यध्कि कष्ट दे रहा है, मेरे हृदय को जला रहा है। भाव यह है कि जिस प्रकार हाथी के सूखे मदजल रहित गण्डस्थल को छोडकर भौंरे अन्यन्त्र चले जाते हैं उसी प्रकार धनहीन मेरे घर को छोडकर अतिथि लोग भो दूसरे लोगों के पास चले जाते हैं। यह अतिथियों द्वारा मेरे घर को छोड जाना मुझे जलने के समान अत्यधिक पीडित कर रहा है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में 'उपमा' अलंकार तथा 'वसन्ततिलका' छन्द है।

6. सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति, नष्टधनाश्रयस्य
यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।13।।

अन्वय – विभवनाशकृता चिन्ता मे, न, आस्ति, (इति) सत्यम्, हि, धनानि भाग्यक्रमेण भवन्ति, यान्ति (च) जनाः नष्टधनाश्रयस्य, सौहृदाद्, अपि, यत्, शिथिलीभवन्ति, एतत् तु, माम् दहति।

कठिन–शब्दार्थ – विभवनाशकृता – धन के विनाश से उत्पन्न। भाग्यक्रमेण – भाग्य चक्र के अनुसार। यान्ति – चले जाते हैं। नष्टधनाश्रयस्य – धन के आश्रय से हीन अर्थात् निर्धन। सौहृदात् – मित्रता से। शिथिलीभवन्ति – ढीले पडने लगते हैं, विमुख होने लगे हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक प्रकरण के प्रथम अंक से है। चारुदत्त अपनी निर्धनता एवं उससे प्राप्त होने वाले लोगों के व्यवहार में आने वाले अन्तर से अत्यन्त सन्तप्त है। वह अपनी मनोव्यथा मित्र मैत्रेय को व्यक्त कर रहा है–

व्याख्या – धन के विनाश से होने वाली चिन्ता मुझे नहीं है, यह सच है, क्योंकि धन तो भाग्य के क्रम से आता–जाता रहता है। परन्तु लोग धन रूपी आश्रय से हीन अर्थात् निर्धन मेरी मित्रता से भो जो मुंह मोडने लगे हैं अर्थात् मैत्री में जो अन्तर आ रहा है वह मुझे अत्यधिक सन्तप्त कर रहा है।

विशेष –

(1) सत्यम् – संसार में सामान्यतया लोग धन हानि के कारण चिन्तित एवं परेशान होने लगते हैं। चारुदत्त अपने विषय में उसका खण्डन करते हुये कहता है कि मुझे धन विनष्ट होने की चिन्ता नहीं है क्योंकि धनी होना या निर्धन हो जाना यह सब तो भाग्य का खेल है। मेरी चिन्ता का कारण तो यह है कि जब मेरे पास धन था तो लोग मेरे मित्र बनकर मेरे साथ–साथ रहा करते थे आज धनविहीन होने पर वे लोग मित्रता से भो मुँह मोडने लगे हैं। उनका मैत्री से मुंह मोडना मुझे चिन्तित कर रहा है।

(2) इसमें काव्यलिंग अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

7. दारिद्रयाद्धियमेति, ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते, परिभवान्निर्वेदमापद्यते।।
निर्विण्णः शुचमेति, शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते।
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।।14।।

अन्वय – (मनुष्यः) दारिद्रयात्, ह्यियम् एति, ह्रीपरिगतः तेजसः प्रभश्यते, निस्तेजाः परिभ्यते, परिभवात्, निर्वेदम् आपद्यते। निर्विण्णः शुचम् एति, शोकपिहितः बुद्ध्या परित्यज्यते, निर्बुद्धिः क्षयम् एति, अहो, निधनता सर्वापदाम् आस्पदम्।।

कठिन–शब्दार्थ – ह्यियम् – लज्जा को। एति – प्राप्त होता है। ह्रीपरिगतः – लज्जित व्यक्ति। प्रभश्यते – भ्रष्ट हो जाता है। निस्तेजाः – तेज शून्य। परिभ्यते – अपमानित होता है। निर्वेदम् – ग्लानि को। आपद्यते – प्राप्त होता है। निर्विण्ण – ग्लानियुक्त व्यक्ति। शुचम् – शोक को। परित्यज्यते – त्याग दिया जाता है। निर्बुद्धि – बुद्धिविहीन, अविवेकी । सर्वापदाम् – समस्त विपत्तियों का। अपस्पदम् – स्थान, मूल कारण है।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में प्रकरण का नायक चारुदत्त निर्धनता से अत्यन्त दुःखी होकर उससे होने वाले परिणामों को व्यक्त कर रहा है, उसकी दृष्टि में गरीबी सभो विपत्तियों का मूल कारण है।

व्याख्या – दरिद्रता के कारण (मनुष्य) लज्जा को प्राप्त करता है। अर्थात् अनेक स्थानों पर उसे लज्जित होना पड़ता है। लज्जित व्यक्ति तेज से भ्रष्ट हो जाता है। अर्थात् वह निस्तेज हो जाता है। तेजहीन व्यक्ति अपमानित होता है, अपमान से वह ग्लानि को प्राप्त करता है।

ग्लानि युक्त शोक को प्राप्त करता है, शोकाकुल व्यक्ति बुद्धि द्वारा त्याग दिया जाता है अर्थात् विवेकहीन हो जाता है। विवेकहीन होने पर विनाश को प्राप्त करता है। आश्चर्य है, दरिद्रता समस्त विपत्तियों का स्थान है, मूल कारण है।

विशेष –

(1) निर्बुद्धिः क्षयमेति – इसका आधर भगवद्गीता का यह वचन है ''बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'' किसी कवि ने भो कहा है– ''जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।''

(2) प्रस्तुत श्लोक में उत्तर–उत्तर वाक्यार्थ के प्रति पूर्व–पूर्व वाक्यार्थ के हेतु बन जाने से कारणमाला अलंकार है।

(3) प्रस्तुत पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

8. **निवासश्चिन्तायाः पर परिभवो वैरमपरं**
जुगुप्सा मित्राणां स्वजन विद्वेषकरणम्।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ।।15।।

अन्वय – (दारिद्यं हि पुरूषस्य) चिन्तायाः निवासः, परपरिभवः, अपरम् वैरम्, मित्राणां जुगुप्सा, स्वजन–जनविषकरणम्, कलत्रात् परिभवः भवति (अतः) वनम् गन्तुम् बुद्धिः च भवति। हृदिस्थः शोकाग्निः न दहति, सन्तापयति च ।।15।।

कठिन–शब्दार्थ – परपरिभवः – दूसरों के द्वारा किया जाने वाला अनादर, जुगुप्सा – घृणा। कलत्रात् – स्त्री से । परिभवः – तिरस्कार। बुद्धिः – ज्ञान, विचार। हृदिस्थः – हृदय में रहने वाली। सन्तापयति – सन्ताप देती है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में चारुदत्त दरिद्रता के विषय में अपने अनुभवों के आधर पर विचार व्यक्त कर रहा है। वह कहता है –

व्याख्या – (निर्धनता पुरूषों की) चिन्ता का घर (निवास स्थान) है, अर्थात् जहाँ निर्धनता है, वहाँ चिन्ता सदैव बनी रहती है। दूसरों के द्वारा किया जाने वाला अनादर अथवा महान् अपमान है, निर्धन व्यक्ति को हर कोई अपमानित कर देता है। यह दूसरी विलक्षण शत्रुता है, मित्रों की घृणा की जननी है अर्थात् निर्धन से मित्र भो घृणा करते हैं। अपने बन्धु–बान्ध्वों तथा अन्य लोगों के विद्वेष का कारण है। पत्नी से होने वाला तिरस्कार है अर्थात् पत्नी भो बार–बार तिरस्कृत करती है। परिणामस्वरूप मनुष्य की बार–बार घर छोड़कर वन में जाने की इच्छा होती है। यह निर्धनता वस्तुतः हृदय में स्थित शोक रूपी अग्नि है जो पूरी तरह जला नहीं डालती है, अपितु तपाती रहती है। भाव यह है कि धीरे–धीरे तपा तपा कर मनुष्य को मृत तुल्य कर देती है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में दरिद्रता के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है।

(2) एक दारिद्य का विभिन्न रूपों से उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार है। 'शोकाग्निः' में रूपक अलंकार है। अग्नि रूप कारण के रहने पर भो दाह रूप कार्य के न होने से विशेषोक्ति है। इन सबका परस्पर अंगागिभाव होने से सङ्कर अलंकार है।

(3) इस पद्य में शिखरिणी छन्द है।

9. **तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो**
विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरम्
सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियञ्च।।31।।

अन्वय – वेशवासः तरुणजनसहायः, चिन्त्यताम्, विगणय मार्गजाता लता इव, त्वम्, गणिका असि, हि पण्यभतं धनहार्यम् शरीरम् वहसि, भद्रे! सुप्रियम् च अप्रियम् च समम् उपचर।।31।।

कठिन–शब्दार्थ – वेशवासः – वेश्यालय का निवास। तरूणजनसहायः – युवकों की सहायता पर आश्रित। मार्गजाता – राह में उत्पन्न होने वाली, पण्यभ्तम् – बेची जाने वाली वस्तु के समान। धनहार्यम् – धन खरीदने योग्य। उपचार – सेवा करो, व्यवहार करो।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के प्रथम अंक से अवतरित है। रात्रि का समय है। शकार व विट वेश्या वसन्तसेना का पीछा कर रहे हैं। दोनों उसे अनेक प्रकार के विशेषणों से सम्बोधित करते हुये उसे रोकने का प्रयास कर रहे हैं। प्रस्तुत कथन विट का है। वह वसन्तसेना द्वारा 'शान्त' रहो ऐसा कहने पर उसे 'श्रान्त' समझ लेता है तथा इस प्रकार अपने विचार व्यक्त करता है –

व्याख्या – (हे वसन्तसेने!) वेश्यालय का निवास युवक जनों की सहायता पर आश्रित रहने वाला होता है, यह तुम्हे समझ लेना चाहिए। अतः युवक शकार की तुम्हें अवहेलना नहीं करनी चाहिए। तुम विचार करो, मार्ग (सड़क) पर उत्पन्न लता के समान (सभो द्वारा उपभोग्या) तुम वेश्या हो। क्योंकि विक्रय योग्य वस्तु के समान ध्न से खरीदने योग्य शरीर को तुम धारण कर रही हो। अतः हे भद्रे! सुप्रिय अथवा अप्रिय दोनों के साथ तुम समान रूप से व्यवहार करो।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में उपमा एवं काव्यलिंग अलंकार है।

(2) इसमें मालिनी छन्द है।

10. वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः,
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्राविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे,
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।।32।।

अन्वय – विचक्षण, द्विजवरः मूर्खः वर्णाधमः अपि (एकस्यामेव) वाप्याम् स्नाति। या बर्हिणा नामिता फुल्लाम् (तामेव) लताम् वायसः अपि नाम्यति। हि, यथा, नावा ब्रह्मक्षत्रविशः तरन्ति, तया एव इतरे च (तरन्ति)। त्वं वेश्या असि, अतः वापी इव, लता इव, नौ इव, सर्वम् जनं भज।।32।।

कठिन–शब्दार्थ – विचक्षणः – अतिशय विद्वान्, द्विजवरः – ब्राह्मण श्रेष्ठ, वर्णाधमः – नीच जाति वाला शूद्र, वाप्याम् – बावड़ी में, बर्हिणा – मोर द्वारा, नामिता – झुकाई गई थी, फुल्लाम् – फूली हुई, प्रफुल्लित । वायसः – कौआ, नाम्यति – झुकाता है। नौः – नौका। भज – सेवा करो।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के प्रथम अंक से अवतरित है। विट वसन्तसेना की तुलना बावडी, लता एवं नौका से करते हुये उसे सभो लोगों की समान भाव से सेवा करने की प्रेरणा देता है–

व्याख्या – अतिशय विद्वान् ब्राह्मण तथा मूर्ख वर्णाधम शूद्रादि एक ही बावड़ी में स्नान करता है। जो लता मोर द्वारा झुकाई गई थी, उसी प्रफुल्लित लता पर कौआ बैठकर उसे झुकाता है। जिस नाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य (गंगादि नदियां) पार करते हैं, उसी से शूद्र भो पार करते हैं। हे वसन्तसेना। तुम वेश्या हो, अतः बावड़ी के समान, लता के समान और नौका के समान सभो लोगों की समान भाव से सेवा करो अर्थात् जैसे ये तीनों बिना किसी भदभाव के सब के साथ समान व्यवहार करती हैं, वैसे ही वेश्या होने से तुम्हें भो भदभाव नहीं करना चाहिए।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुत पदार्थ द्विजवर और वर्णाधम का स्नानरूप एक क्रिया के साथ

सम्बन्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का तथा इतर शूद्र का तरण रूप एक क्रिया के साथ सम्बन्ध है। अतः दोनो में तुल्ययोगिता अलंकार है।

(2) वेश्या रूपी एक उपमेय का तीन(वापी, लता, नौका) उपमानों के साथ सादृश्य वर्णित होने से मालोपमा है।

(3) 'सर्वभज' इस वाक्यार्थ के प्रति 'त्वं वेश्यासि' यह वाक्यार्थ हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

(4) इन तीनों का परस्पर अंगांगिभाव होने से संकर अलंकार है।

(5) इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

11. लिम्पतीव तमोऽङ्गनि वर्षतीवाजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विपफलतां गता।।34।।

अन्वय – तमः अङ्गानि लिम्पति इव, नभः अञ्जनम् वर्षति इव, असत्पुरूष सेवा इव दृष्टिः विपफलतां गता ।।34।।

कठिन–शब्दार्थ – तमः – अन्धकार। लिम्पति इव – लीप सा रहा है। अंजनम् – काजल। वर्षति इव – वर्षा सा कर रहा है। दृष्टिः – नेत्रा ज्योति। गता – प्राप्त हो गई है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में रात्रिकालीन घोर अन्धकार का वर्णन किया गया ह। विट अन्धकार का वर्णन करते हुये कर रहा है।

व्याख्या – अन्धकार शरीर के अंगों को मानो व्याप्त सा कर रहा है, आकाश मानो काजल की वर्षा सी कर रहा है। दुष्ट पुरुष की सेवा के समान मेरी दृष्टि व्यर्थ हो गई है अर्थात् कुछ भो दिखाई नहीं दे रहा है।

विशेष –

(1) श्लोक के पूवार्द्ध में दोनो वाक्यों में क्रिया के साथ 'इव' का प्रयोग होने से 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है। उत्तरार्द्ध में उपमा अलंकार है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा व उपमा की संसृष्टि है।

(2) इसमें अनुष्टुप् छन्द है।

12. दारिद्रयात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते,
सुस्निग्धः विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभवन्त्यापदः।
सत्यं ह्रासमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते,
पापं कम च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ।।36।।

अन्वय – दारिद्र्यात् बान्धवजनः पुरुषस्य वाक्ये न सन्तिष्ठते, सुस्निग्धाः सुहृदः विमुखीभवन्ति, आपदः स्फारी भवन्ति, सत्वम् ह्रासं उपैति, शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते। परैः अपि च यत् पापम् कम कृतम् तत् तस्य संभाव्यते।।36।।

कठिन – शब्दार्थ – सन्तिष्ठन्ते – रहते हैं, मानते हैं। सुस्निग्धाः – अत्यन्त स्नेही। सुहृदः – मित्र । विमुखीभवन्ति – विमुख हो जाते हैं, मुंह फेर लेते हैं। स्फारीभवन्ति – वृद्धि को प्राप्त होती हैं। सत्वम् – बल। ह्रासम् – न्यूनता को। उपैति – प्राप्त करता है। शीलशशिनः – आचरण रूपी चन्द्रमा की। परिम्लायते – मलिन होने लगती है। संभाव्यते – मान लिया जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में निर्धनता के दुष्परिणामों को बतलाया गया है। चारुदत्त अपनी निर्धनता से अत्यन्त दुःखी है। वह कहता है –

व्याख्या – निर्धनता के कारण बन्धुबान्धव लोग उस निर्धन व्यक्ति के वचनों पर विश्वास नहीं करते हैं। अत्यधिक घनिष्ठ मित्र भो विमुख हो जाते हैं। दिन प्रतिदिन आपत्तियाँ बढने लगती हैं। शक्ति क्षीण होने लगती है। चरित्रारूपी चन्द्रमा की कान्ति फीकी पड़ने लगती

हैं। दूसरो के द्वारा भो जो पाप कम किया जाता है, वह (पाप कम) उस गरीब का ही मान लिया जाता है।

विशेष –

(1) विदूषक चारुदत्त का घनिष्ठ मित्र है परन्तु इस समय वह भो अपने मित्र की आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है। इसका कारण चारुदत्त अपनी निर्धनता को मानता है तथा तीन श्लोकों में निरूत्तर अपनी व्यथा व्यक्त करता है।

(2) 'शीलशशिनः' में रूपक अलंकार है। इसमें 'शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

13. **सङ्गं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते, संभाषते नादरात्,**
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया,
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम्।।37।।

अन्वय – हि, कश्चित् अस्य सङ्गम् नैव कुरुते, (अतः) आदरात् न संभाषते, उत्सवेषु धनिनाम्, गृहम् सम्प्राप्तः, सावज्ञम्, अवलोक्यते, अल्पच्छदः (निर्धनः) लज्जया, महाजनस्य, दूरात् एवं विहरति, (अतः अहम् इदम्) मन्ये, निर्धनता अपरम् प्रकामम् षष्ठम् महापातकम् ।।37।।

कठिन–शब्दार्थ – संभाषते – बोलता है। सावज्ञम – अपमान के साथ। अवलोक्यते – देखा जाता है। अल्पच्छदः – अपर्याप्त वस्त्र धरण करने वाला। विहरति – चलता है। प्रकामम् – बड़ा प्रबल। महापातकम् – महापातक, बड़ा पाप (है)।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त ने निर्धनता को पांच महापातकों से भिन्न छठा महापातक बतलाया है–

व्याख्या – कोई भो व्यक्ति निर्धन की संगति नहीं करता है, उसके साथ रहना पसन्द नहीं करता है, कोई भो (इससे) आदरपूर्वक नहीं बोलता है। उत्सवों में, धनवानों के घर पहुंचने वाला निर्धन पुरुष अपमान के साथ देखा जाता है। अपर्याप्त वस्त्रों वाला निर्धन व्यक्ति लज्जा के कारण बड़े लोगो से दूर–दूर ही चलता है, रहता है। अतः (मै चारुदत्त यही) मानता हूं कि निर्धनता (पांच महापातकों से) भिन्न छठा प्रबल महापातक है।

विशेष –

(1) षष्ठं महापातकम् – मनु आदि महर्षियों ने पांच महापातक माने हैं (क) ब्रह्म हत्या (ख) सुरापान (ग) चोरी (घ) गुरुपली–गमन (ड) इनमें से किसी भो पातकी के साथ वर्ष भर रहना। चारुदत्त की दृष्टि में 'निर्धनता' इन्हीं की कोटि में छठा महापातक है।

(2) 'मन्ये' के कारण इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'शार्दूलविक्रिडित' छन्द है।

14. **दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणपफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी,**
आदर्शः शिक्षितानां, सुचरितनिकषः शीलवेला–समुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो,
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यध्किगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये।।48।।

अन्वय – दीनानाम् स्वगुणपफलनतः कल्पवृक्षः, सज्जनानाम् कुटुम्बी, शिक्षितानाम् आदर्शः, सुचरित निकषः, शीलवेला समुद्रः, सत्कर्ता न अवमन्ता, पुरुषगुणनिधिः, दक्षिणोदार सत्त्वः, श्लाघ्यः च सः एकः हि अधिकगुणतया, जीवति अन्ये च उच्छ्वसन्ति इव।।48।।

कठिन–शब्दार्थ – स्वगुणफलनतः – अपने गुण रूपी फलों के भार से झुका हुआ। सुचरितनिकषः – सदाचार की कसौटी । शीलवेला – समुद्रः – सत्स्वभाव रूपी तटों का समुद्र। सत्कर्ता – सत्कार करने वाले। न अवमन्ता – पुरुषगुणनिधिः – पौरुषेय गुणों का कोष (किसी का) अपमान न करने वाले। दक्षिणोदारसत्त्वः – सरल एवं उदार स्वभाव वाले।

श्लाघ्यः – प्रशंसनीय। उच्छ्वसन्ति इव – सांस सी ले रहे हैं अर्थात् उनका जीवित रहना, न जीवित रहने के बराबर है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के प्रथम अंक से अवतरित है। इसमें विट चारुदत्त के महान् व्यक्तित्व का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या – (आर्य चारुदत्त) दीनों के (मनोरथों को पूर्ण करने वाले) अपने गुण रूपी पफलों के भार से झुके हुये कल्पवृक्ष हैं। सज्जनों के अपने कुटुम्बी (घर वाले) हैं, शिक्षित लोगो के लिए आदर्श रूप में हैं, सदाचार की कसौटी, सत्स्वभावरूपी मर्यादा के समुद्र, सभो का सत्कार करने वाले, (किसी का) अपमान न करने वाले, पुरूष में रहने वाले गुणों के खजाने, सरल एवं उदार स्वभाव वाले तथा श्लाघनीय वे अकेले (चारुदत्त ही) अधिक गुण वाले होने से इस संसार में जीवित हैं अन्य लोग तो केवल सांस सी ले रहे हैं अर्थात् उनका जीवन कोई जीवन नहीं है।

विशेष :

(1) प्रस्तुत पद्य में एक चारुदत्त का ही अनेक रूपों से उल्लेख होने के कारण उल्लेख अलंकार है।

(2) 'स्वगुणफलनतः' 'शीलवेलासमुद्रः' आदि में रूपक है तथा 'उच्छ्वसन्ति इव' में क्रियोत्प्रेक्षा है। इन सबकी संसृष्टि है।

(3) इसमें स्रग्धरा छन्द है।

15. अन्धस्य दृष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य
मूर्खस्य बुद्विरिव सिद्धिरिवालसस्य।
स्वल्पस्मृतेत्यसनिनः परमेव विद्या
त्वां प्राप्य सा रतिरिवारिजने प्रनष्टा।।49।।

अन्वय – अन्धस्य दृष्टिः इव, आतुरस्य पुष्टिः इव, मूर्खस्य बुद्धिः इव, अलसस्य सिद्धिः इव, स्वल्पस्मृतेः व्यसनिनः परमा विद्या इव, अरिजने रतिः इव सा त्वाम् प्राप्य विनष्टा।।

कठिन–शब्दार्थ – आतुरस्य – रोगी की। पुष्टिः – शक्ति। अलसस्य – आलसी की। सिद्धिः – सफलता। स्वल्पस्मृतेः – मन्द बुद्धिवाले। अरिजने – शत्रुजन में। रतिः – प्रेम। प्रनष्टा – अदृश्य हो गई।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य 'मृच्छकटिकम्' के प्रथम अंक से लिया गया है। इसमें वसन्तसेना के अकस्मात् अदृश्य हो जाने का वर्णन विट द्वारा किया गया है। वह शकार से कह रहा है–

व्याख्या – अन्धे की नेत्र ज्योति के समान, रोगी की शक्ति के समान, मूर्ख की बुधि के समान, आलसी की सफलता के समान, मन्द बुद्धिवाले व्यसनी की परम विद्या (उत्कृष्ट विद्या) के समान, शत्रुजन में प्रेम के समान, वह वसन्तसेना तुम्हें पाकर अदृश्य हो गई।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में दृष्टि, पुष्टि, बुद्धिः, सिद्धि, विद्या, रति इन अनेक उपमानों से उपमेयभत् वसन्तसेना का उल्लेख करने के कारण मालोपमा अलंकार है। मालोपमा का लक्षण हैः–

''मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।''

(2) इसमें वसन्ततिलका छन्द है। जिसका लक्षण है

'' उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।''

16. यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां
नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदाऽस्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रातां
चिरानुरक्तोऋपि विरज्यते जनः।।53।।

अन्वय – यदा नरः कृतान्तोपहिताम् भाग्यक्षयपीडिताम् दशाम् प्रपद्यते, तदा तु अस्य मित्राणि अपि अमित्रताम् यान्ति, चिरानुरक्तः अपि जनः विरज्यते।।

कठिन–शब्दार्थ – कृतान्तोपहिताम् – प्रतिकूल भाग्य द्वारा उपस्थापित। भाग्यक्षय पीडिताम् – भाग्यनाश के कारण पीडित। प्रपद्यते – प्राप्त करता है। अमित्राताम् – शत्रुता को। यान्ति – प्राप्त कर लेते हैं। चिरानुरक्तः – बहुत समय से प्रेम करने वाला। विरज्यते – विरक्त हो जाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिक के प्रथम अंक से अवतरित है। अवसर पाकर वसन्तसेना चारुदत्त के घर में प्रवेश कर जाती है। चारुदत्त उसे रदनिका समझता है तथा बार बार रोहसेन को भोतर ले जाने के लिए कहता है। वह कुछ जवाब नहीं देती है। तब चारुदत्त दुःखी होकर अपनी प्रतिक्रिया इस प्राकर व्यक्त करता है–

व्याख्या – जब मनुष्य दुर्भाग्य द्वारा उपस्थापित, भाग्य विनाश के कारण दलित दुर्दशा को प्राप्त हो जाता है, तब इस (निर्धन) के मित्र भो शत्रुता को प्राप्त हो जाते हैं तथा दीर्घकाल से प्रेम रखने वाला व्यक्ति भो विरक्त (प्रेम रहित) हो जाता है। वह भो प्रेमपूर्वक बात नहीं करता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार तथा वंशस्थ छन्द है।

17. उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु
ग्र्हगण–परिवारो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिर–निकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
स्रुतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति।।57।।

अन्वय – कामिनीगण्डपाण्डुः ग्रहगण परिवारः, राजमार्ग प्रदीपः, शशांङ्कः उदयति, हि, यस्य गौराः रश्मयः स्त्रुतजले पंके क्षीरधाराः इव तिमिरनिकर मध्ये पतन्ति।।57।।

कठिन–शब्दार्थ – कामिनीगण्डपाण्डुः – सुन्दर युवती के गालों के समान। ग्रहगण परिवारः – ग्रह–नक्षत्र रूपी परिवार वाला। राजमार्ग प्रदीपः – राज मार्ग पर प्रकाश करने वाला दीपक। शशांङ्कः – चन्द्रमा। गौराः – गौर वर्ण वाली, रश्मयः – किरणें। स्त्रुतजले – निकले हुये अर्थात् सूखे जल वाले। पङ्के – कीचड़ में। क्षीरधाराः इव – दूध की धराओं के समान। तिमिरनिकर मध्ये – अन्धकार समूह के मध्य में।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य में रात्री के समय चन्द्रमा के उदय होने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – सुन्दर युवती के गालों के समान उज्ज्वल, ग्रह–नक्षत्र रूपी परिवार वाला तथा राजमार्ग का प्रकाशक चन्द्रमा निश्चित ही उदित हो रहा है। जिस चन्द्रमा की श्वेत किरणें, सूखे हुये जल वाले (काले) कीचड़ में दूध की धराओं के समान, अन्धकार के मध्य में गिर रही हैं।

विशेष –

(1) कामिनीगण्डपाण्डुः में सादृश्यवाचक का लोप होने से लुप्तोपमा अलंकार है। क्षीरधारा इव में भो उपमा अलंकार है।

(2) ग्रहगण–परिवारः – तारागण रूपी परिवार वाला, यहां रूपक अलंकार है।

(3) इस पद्य में मालिनी छन्द है, जिसका लक्षण है–
'न–न–म–य–य–युतेयं मालिनी भोगिलोकैः'।

18. राजमार्गो हि शून्योऽयं रक्षिणः संचरन्ति च।
वंचना परिहर्त्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी।।58।।

अन्वय – हि अयम्, राजमार्गः, शून्यः, रक्षिणः च संचरन्ति, वंचना परिहर्त्तव्या, हि शर्वरी बहुदोषा।।58।।

कठिन–शब्दार्थ – राजमार्गः – प्रमुख रास्ता। रक्षिणः – सिपाही लोग। संचरन्ति – गस्त लगा रहे हैं, पहरा दे रहे हैं। वचना – चोरी रूपी ठगाई को। परिहर्त्तव्या – बचाना है। शर्वरी – रात। बहुदोषा – बहुत प्रकार के दोषों से भरी होती है।

प्रसंग – वसन्तसेना के चले जाने के बाद चारुदत्त व विदूषक मैत्रेय दोनों घर शीघ्र चलने के लिए तत्परता दिखा रहे हैं। क्योकि रात्रि का समय है, सडकें यातायात से रहित हो गई हैं।

व्याख्या – निश्चित रूप से, यह राजमार्ग आवागमन से रहित है अर्थात् शून्य हो गया है। राजमार्ग पर राजपुरूष (सिपाही) गस्त लगा रहे हैं। (वसन्तसेना के स्वर्णाभूषणों की चोरी रूपी) ठगाई को बचाना है। क्योंकि रात्रि बहुत दोषों से परिपूर्ण होती है। अर्थात् रात में ही अनेक अपराध होते हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास की अंगांगिभावेन स्थिति होने से संकर अलंकार है।

(2) इसमें पथ्यावक्त्रा छन्द है।

द्वितीय अंक

19. न गणयति पराभवं कुतश्चिद्
हरति ददाति च नित्यमर्थजातम्।
नृपतिरिव निकाममापदर्शी
विभववता समुपास्यते जनेन।।7।।

अन्वय – (द्यूतं कर्तृ) कुतश्चित् (अपि) पराभवम् न गणयति, नित्यम् अर्थजातम् हरति, ददाति च। विभववता (अपि) जनेन निकामम् आयदर्शी राजा इव समुपास्यते।।7।।

कठिन–शब्दार्थ – कुतश्चित् – किसी से। पराभवम् – पराजय अथवा अपमान को। गणयति – गिनता है, मानता है। अर्थजातम् – धन समुदाय। हरति – ले लेता है। विभववता – धनवान्। निकामम् – प्रचुर। आयदर्शी – धन लाभ दिखलाने वाले। समुपास्यते – सेवित होता है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अंक से अवतरित है। इस अंक में नाटककार ने जुआ खेलने व जुआरियों के मध्य होने वाले कलह का यथार्थ चित्रण किया है। प्रस्तुत पद्य में दर्दुरक द्यूत को राजा के समान बतलाता हुआ कह रहा हैः–

व्याख्या – (यह जुआ) किसी से भो (होने वाले) अपमान की परवाह नहीं करता है अर्थात् जुआरी कभो भो पराजय अथवा अपमान की परवाह नहीं करता है। प्रतिदिन जुए में बहुत धन ले लेता है तथा दे देता है अर्थात् जुए में हार–जीत चलती रहती है। धनवान् व्यक्ति के द्वारा भो नित्य प्रचुर आय दिखने वाले राजा के समान सेवित होता है।

विशेष –

(1) दर्दुरक ने द्यूत को राजा के तुल्य माना है। जैसे एक राजा किसी से हार नहीं मानता है, बार–बार युद्ध करता रहता है। ऐसी ही स्थिति द्यूत में होती है। राजा किसी पर रुष्ट होकर उसका सब कुछ ले लेता है। तथा प्रसन्न होने पर उसे बहुत कुछ दे देता है। उसी प्रकार द्यूत भो कभो कंगाल बना देता है तो कभो मालामाल बना देता है। जो राजा धन लाभ दिलाने वाला होता है, उसकी सेवा में धनी भो और अधिक धन प्राप्ति की इच्छा से लगे रहते हैं उसी प्रकार लोग जुए में भो लगे रहते हैं।

(2) प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है।

20. अयं पटः सूत्र–दरिद्रतां गतो
ह्ययं पटश्छिद्रशतैरलङ्कृतः।

अयं पटः प्रावरितुं न शक्यते
ह्ययं पटः संवृत एव शोभते।।10।।

अन्वय – अयम् पटः सूत्रा दरिद्रताम् गतः, अयम् पटः छिद्रशतैः अलंकृतः, अयम् पटः प्रावरितुम् न शक्यते, अयम् पटः संवृतः एव शोभते।

कठिन–शब्दार्थ – पटः – वस्त्र, कपड़ा। सूत्र दरिद्रताम् – सूतों की जीर्णता को। गतः – प्राप्त हो चुका है। छिद्रशतैः – सैकड़ों छेदों से। प्रावरितुम् – शरीर ढकने के लिये। संवृतः – लपेटा हुआ। शोभते – अच्छा लगता है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अंक से अवतरित है। प्रस्तुत पद्य में दर्दुरक ने अपने उत्तरीय वस्त्र की स्थिति का वर्णन किया है। वह पुराने द्यूत–क्रीडाध्यक्ष माथुर को सामने से आता देखकर अपने को उससे छिपाना चाहता है। वह वस्त्र से अपने शरीर को ढकने का प्रयास करता है। परन्तु उस वस्त्र की स्थिति बड़ी दयनीय है:–

व्याख्या – यह कपड़ा (मेरा दुपट्टा) जीण–शीर्ण धगों वाला हो चुका है। यह कपड़ा सैकड़ों छिद्रों से युक्त है। यह कपड़ा (शरीर) ढकने में समर्थ नहीं है। यह कपड़ा निश्चित रूप से लपेटा हुआ (घरी किया हुआ ही) अच्छा लगता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में उत्तरीय वस्त्र का यथार्थ चित्रण किया गया है।

(2) इसमे वंशस्थ छन्द है।

21. यः स्तब्धं दिवसान्तमानतशिरा नास्ते समुल्लम्बितो
यस्योद्धर्षणलोष्टकैरपि सदा पृष्ठे न जातः किणः।
यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहर्जंघान्तरं चर्व्यते
तस्यात्यायतकोमलस्य सततं द्यूत–प्रसंगेन किम्।।12।।

अन्वय – यः (अहम् इव) समुल्लम्बितः, आनतशिराः (सन्) दिवसान्तम् स्तब्ध्म् न आस्ते। यस्य पृष्ठे उद्घर्षण लोष्ठकैः अपि किणः सदा न जातः, यस्य च एतत् जंघान्तरम्, कुक्कुरैः अहरहः न चर्व्यते, अत्यायत कोमलस्य तस्य सततम् द्यूतप्रसंगे न किम्।।12।।

कठिन–शब्दार्थ – समुल्लम्बितः – ऊपर लटका हुआ। आनतशिरा – शिर को नीचे झुकाये हुये। दिवसान्तम् – सायंकाल तक। स्तब्धम् – निश्चित रूप से। पृष्ठे – पीठ पर। उद्घर्षणलोष्टकैः – नुकीले ढेलों से। किणः – चिन्ह। जंघान्तरम् – जांघों के भोतरी भाग को। कुक्कुरैः – कुत्ते। अहरहः – प्रतिदिन। चर्व्यते – चबाते हैं। अत्यायतकोमलस्य – बहुत अधिक कोमल।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अंक से अवतरित है। इसमें द्यूत अध्यक्ष माथुर द्वारा संवाहक को परेशान करते देखकर दर्दुरक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कह रहा है–

व्याख्या – (मेरे समान) जो मनुष्य लटका हुआ नीचे शिरवाला होते हुये सायंकाल तक अर्थात् दिनभर निश्चित रूप से नहीं रह सकता है। जिसकी पीठ पर सदैव नुकीले ढेलों (पर घसीटने) से चिन्ह–घट्टे नहीं पड़े हैं। तथा (हारकर या जीतकर भागते समय) जिसकी जांघों के मांस को प्रतिदिन कुत्ते नहीं चबाते हैं– ऐसे अत्यन्त कोमल शरीर वाले व्यक्ति को प्रतिदिन जुआ खेलने से क्या लाभ? दर्दुरक के कहने का भाव यह है कि मेरे समान जो उक्त परिस्थितियों को सहन कर सकता है उसी को जुआ खेलना चाहिए न कि सरल व कोमल शरीर वाले पुरूष को।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

तृतीय अंक

22. उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां
रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः।।3।।

अन्वय – उत्कण्ठितस्य, हृदयानुगुणा, वयस्या संकेतके चिरयति (सति) प्रवरः विनोदः विरहातुराणाम् प्रियतमा संस्थापना रक्तस्य रागपरिवृद्धकरः प्रमोदः (अस्ति) ।।3।।

कठिन–शब्दार्थ – उत्कण्ठितस्य – वियोग से विकल व्यक्ति की। हृदयानुगुणा – हृदय से चाही गई। वयस्या – प्रिय सखी है। संकेतके – संकेत करने वाले के। चिरयति सति – देर करने पर। प्रवरः – सबसे अच्छा। विरहातुराणाम् – प्रेयसी के वियोग से व्याकुल व्यक्तियों की। संस्थापना – सहानुभूति दिखाने वाली है। रक्तस्य – प्रेमी व्यक्ति के। रागपरिवृद्धकरः – परस्पर प्रेम को बढ़ाने वाला। प्रमोदः – मनोरंजन का साध्न है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से अवतरित है। चारुदत्त व विदूषक रेभिल का संगीत सुनकर लौटे है। मार्ग में चारुदत्त वीणा नामक वाद्य की प्रशंसा करते हुये कह रहा है–

व्याख्या – (वीणा नामक वाद्य) विरह से व्याकुल व्यक्ति की मनपसन्द साथी है, किसो निश्चित स्थान एवं समय पर मिलने का संकेत करने वाले प्रेमी के विलम्ब करने पर सबसे अच्छा मनोरंजन का साधन है। प्रियतमा के (मरणादिजन्य) वियोग से पीडित व्यक्ति के प्रति सबसे अधिक सहानुभूति दिखाने वाली है। प्रेमी के प्रेम को बढाने वाला प्रमोद का साध्न है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में एक वीणा का अनेक रूपों से उल्लेख है, अतः उल्लेख अलंकार है। विनोद एवं प्रमोद रूपी कार्यों का वीणा रूपी कारण के साथ अभद प्रतिपादित होने से हेतु अलंकार है।

(2) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

23. रक्तञ्च नाम मधुरञ्च समं स्फुटञ्च
भावान्वितञ्च ललितञ्च मनोहरञ्च।
किं वा प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तै
रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये।।4।।

अन्वय – (गीतम्) नाम रक्तम्, च मधुरम् च समम् च स्फुटम् भावान्वितम् च, ललितम् च, मनोहर च (आसीत्) वा मदुक्तैः बहुभिः प्रशस्तवचनैः किम्? यदि वनिता अन्तर्हिता भवेत् इति मन्ये।।4।।

कठिन–शब्दार्थ – रक्तम् – रागपूर्ण। मधुरम् – मीठा। भावान्वितम् – भारवों से युक्त। ललितम् – ललित, सुन्दर। मनोहरम् – मन को अच्छा लगने वाला। मदुक्तैः – मुझ चारुदत्त द्वारा कहे हुये। प्रशस्तवचनैः – प्रशंसायुक्त वचनों से। किम् – क्या लाभ। वनिता – स्त्री। अन्तर्हिता – भोतर छिपी हुई है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से अवतरित है। इसमें चारुदत्त द्वारा रेभिल के गायन की अनेक प्रकार से प्रशंसा की गई है।

व्याख्या – (वह रेभिल का गायन) रागों से पूर्ण (सुनने में) मीठा लगने वाला, स्वर और लय की समता वाला, स्पष्ट, भावपूर्ण, ललित तथा मन को आकर्षित करने वाला था। अथवा मेरे द्वारा कहे गये बहुत से प्रंशसायुक्त वचनों से क्या लाभ। मुझे तो एसा लगता है कि (उस रेभिल के भोतर) मानों कोई स्त्री छिपी हुई है। चारुदत्त के कहने का भाव यह है कि वह रेभिल बाहर से पुरुष प्रतीत होता है परन्तु उसके गाने से वह स्त्री प्रतीत हो रहा था।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में संगीतशास्त्र के अनेक शब्द प्रयुक्त हैं जैसे –रक्तम्,मधुरम्,स्फुटम्,। नारद शिक्षा के अनुसार वाद्य स्वरों का पूर्णतया मेल होना 'रक्त' कहा जाता है। 'मधुर'–स्वर तथा भाव के अनुकूल ललित पदों तथा वर्णों का प्रयोग 'मधुर' कहलाता है। 'स्फुटम्' – इसका अर्थ है व्याकरण सम्बंधी शुद्धता।

(2) श्लोक में 'मन्ये' तथा 'यदि' का प्रयोग किया गया है, अतः 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

24 असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाश
मस्तं व्रजत्युन्नत – कोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य
तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम् ।।3/6।।

अन्वय – हि जलावगाढस्य, वनद्विपस्य, अवशिष्टम्, तीक्ष्णम्, विषाणाग्रम्, इव उन्नतकोटिः असौ इन्दु तिमिरावकाशम् दत्त्वा अस्तम् व्रजति ।।6।।

कठिन शब्दार्थ – जलावगाढस्य–पानी में डूबे हुए। वनद्विपस्य–जंगली हाथी के। अवशिष्टम्–बचे हुये। विषाणाग्रम्–दांत के अग्रभाग। उन्नतकोटिः–उठे हुये(टेढे) किनारों वाला। तिमिरावकाशम्–अन्धकार को स्थान। अस्तम्–अस्ताचल की ओर। याति–जा रहा है।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के तृतीय अंक से उद्धृत है। इसमें चन्द्रमा के अस्त होने का वर्णन किया गया है–

व्याख्या – निश्चय ही पानी में डूबे हुये जंगली हाथी के (पानी में डूबने से) बचे हुये तीखे दाँत के अग्रभाग (किनारे) के समान उठे हुए (उन्नत) किनारों वाला यह चन्द्रमा अन्धकार को अवकाश देता हुआ सा अस्त होने जा रहा है। अर्थात् रात्रि समाप्ति की ओर अग्रसर है।

विशेष –

(1) विषाणाग्रम् – विषाण का अर्थ सामान्यतः श्रृंग (सींग) होता है परन्तु यहाँ हाथी के प्रसंग में 'दाँत' अर्थ समझना सार्थक है।

(2) श्लोक में 'इव' का प्रयोग हुआ है, अतः उपमा अलंकार है।

(3) इसमें उपजाति छन्द है।

25. इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी
ललाटदेशादुपसर्पतीव माम् ।
अदृश्य रुपा चपला जरेव या
मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्द्धते ।।8।।

अन्वय – हि, इयम्, निद्रा, ललाटदेशात्, नयनावलम्बिनी (सती) माम् उपसर्पति, इव, चपला, अदृश्यरूपा या जरा इव, मनुष्यसत्वम् परिभ्य्र वर्द्धते ।।8।।

कठिन–शब्दार्थ – नयनावलम्बिनी – नेत्रों पर छा जाने वाली। उपसर्पति इव – समीप में आ सी रही है। अदृश्यरूपा – न दिखाई देने वाली। जरा इव – वृद्धावस्था के समान। मनुष्यसत्त्वम् – मनुष्य के बल को। परिभ्य्र – तिरस्कृत करके। वर्द्धते – वृद्धि को प्राप्त होती है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से उद्धृत है। इसमें निद्रा आने का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

व्याख्या – क्योंकि यह नींद ललाट प्रदेश से नीचे आंखों पर छा जाने वाली होती हुई मुझ चारुदत्त के समीप सी आ रही है। चंचल, न दिखाई देने वाली वृावस्था के समान जो नींद मनुष्य की शक्ति को तिरस्कृत करके वृद्धि को प्राप्त होती है। अर्थात् जब नींद आती है तो उसके सामने किसी की शक्ति नहीं चलती है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में निद्रा की अपराजेय शक्ति का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

(2) ललाट से नेत्रों तक नीचे आने की कल्पना के साथ समीपा–गमन की उत्प्रेक्षा की गई है। अतः श्लोक के पूवार्द्ध में 'क्रिया के साथ इव' होने से 'उत्प्रेक्षा' अलंकार है। श्लोक के उत्तरार्द्ध में सादृश्यार्थक 'इव' होने से 'उपमा' अलंकार है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा व उपमा की संसृष्टि है।

(3) इसमें वंशस्थ छन्द है।

26. कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्द्धते,
विश्वस्तेषु च वचनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः,
मार्गो ह्येष नरेन्द्र–सौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना।।11।।

अन्वय – स्वप्ने, विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवः चौर्यम् च यत् वर्द्धते, इदम् पुरुषाः, कामम् नीचम् वदन्तु, हि तत् शौर्यम् न (अस्ति) स्वाधीना वचनीयता अपि हि वरम्, बद्धः सेवाञ्जलिः न (वरम्), हि एषः मार्गः पूर्वम् द्रौणिना, नरेन्द्रसौप्तिकवधे कृतः।।11।।

कठिन–शब्दार्थ – विश्वस्तेषु – विश्वास किये हुये लोगो में। वचना – परिभवः – ठगाई के द्वारा अपमान। कामम् – इच्छानुसार। नीचम् – निकृष्ट। वचनीयता – चोरी आदि की निन्दा। बद्धः – बांधी गई। सेवाजलिः – धनिकों की सेवा के लिए अंजलिपुट। द्रौणिना – द्रोणपुत्रा अश्वत्थामा ने। नरेन्द्र सौप्तिकवधे – राजा (युधिष्ठिर) के सोये हुये पुत्रों के वध के लिए।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से लिया गया है। शर्विलक रात्रि के समय चारुदत्त के घर में चोरी करने के उद्देश्य से सेंध लगाता है। वह मन ही मन अपने इस कृत्य के विषय में विचार कर रहा है। उसकी दृष्टि में धनिकों के सामने हाथ फैलाने की अपेक्षा चोरी करना ठीक है क्योंकि यह स्वयं के अधीन किया जाने वाला कार्य है।

व्याख्या – सोये हुये और विश्वस्त लोगो में ठगना रूपी अपमान तथा चोरी जो अधिक होती है, इसे सज्जन लोग भले ही, चाहे जितना नीच कम कहें, क्योंकि यह चोरी करना कोई शूरवीर का कार्य नहीं है। तथापि अपने अधीन रहने वाली इस चोरी करने की निन्दा भो अच्छी है परन्तु धनिकों के सामने नौकरी के लिए हाथ जोड़कर खड़ा होना अच्छा नहीं है।

मैं जो कर रहा हूं यह रास्ता पहले द्रोणाचार्य के पुत्रा अश्वत्थामा ने राजा युधिष्ठिर के सोते हुये सैनिकों अथवा सन्तानों के वध के लिए बनाया था। (वह मन में विचार करता है कि मुझ ब्राह्मण के लिए भो चोरी करना निन्दनीय नहीं है।)

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक का आशय यह है कि जब अश्वत्थामा जैसे ब्राह्मण ने चोरी से वध जैसा दुष्कम कर दिया था तो मुझ ब्राह्मण का भो चोरी करना निन्दनीय नहीं है। धनवानों की सेवा करने की अपेक्षा चोरी करना ठीक है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुप्रशंसा अलंकार है, साथ ही कारण से कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार भो है।

(3) इसमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

27. पद्मव्याकोशं भास्करं बालचन्द्रं,
वापी, विस्तीर्णं स्वस्तिकं पूर्णकुम्भम्।
तत् कस्मिन् देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पं,
दृष्ट्वाश्वो यं यद्विस्मयं यान्ति पौराः।।13।।

अन्वय – पद्मव्याकोशम् भास्करम् बालचन्द्रम्, वापी विस्तीर्णम् स्वस्तिकम्, पूर्णकुम्भम् (एषु सप्त विधेषु सतनु) तत्, कस्मिन् देशे आत्मशिल्पम् दर्शयामि, यत् यम् दृष्ट्वा, श्वः पौराः विस्मयम् यान्ति।।13।।

कठिन–शब्दार्थ – पद्मव्याकोशं – विकसित कमल के समान। बालचन्द्रम् – द्वितीया तिथि के बाल चन्द्रमा के समान। वापी – बावडी। पूर्णकुंभम् – पूर्ण घट के समान। आत्मशिल्पम् – अपनी सेंध लगाने की कला को। पौराः – नगरवासी। विस्मयम् – आश्चर्य को। यान्ति – प्राप्त करेंगे।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में सन्धि (सेंध) के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डाला गया हैः–

व्याख्या – खिला हुआ कमल, सूर्य, बालचन्द्र अर्थात् द्वितीया का चन्द्रमा, बावड़ी, विशाल, स्वस्तिक चिह्न वाली, पूर्ण घट के समान ये सात प्रकार की सेंध होती हैं। तो किस स्थान पर अपनी कला का प्रदर्शन करूं, जिससे प्रातःकाल उसको देखकर नगरवासी आश्चर्य करने लग जायें।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में सात प्रकार की सेंधों का उल्लेख किया गया है।

(2) इसमें 'वैश्वदेवी' छन्द है।

28. शिखा प्रदीपस्य सुवर्णपिञ्जरा
महीतले सन्धिमुखेन निर्गता।
विभाति पर्यन्ततमः समावृता
सुवर्णरेखेव कषे निवेशिता ।।17।।

अन्वय – सुवर्णपिञ्जरा, सन्धिमुखेन, महीतले, निर्गता, पर्यन्ततमः समावृता, प्रदीपस्यशिखा, कषे, निवेशिता, रेखा इव विभाति।।17।।

कठिन–शब्दार्थ – सुवर्णपिञ्जरा – सोने के समान पिंगल वर्ण वाली । निर्गता – निकली हुई। पर्यन्ततमसमावृता – चारों ओर से अंधकार से घिरी हुई, प्रदीपस्य – दीपक की । कषे – कसौटी पर। निवेशिता – खींची गई। सुवर्णस्य – सोने की । विभाति – शोभित हो रही है।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य महाकवि शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के तृतीय अंक से उद्धृत है। शर्विलक रात्रि के समय चारुदत्त के घर में सेंध लगा रहा है। सेंध में से घर में जलने वाले दीपक की रोशनी दिखाई दे रही है, उसकी तुलना सोने की रेखा से की गई है।

व्याख्या – सोने के तुल्य पिंगल वर्ण वाली सेंध के मार्ग से पृथ्वी पर निकलने वाली, चारों ओर
अन्धकार से घिरी हुई दीपक की रोशनी, कसौटी पर खींची गई सोने की रेखा के समान सुशोभित हो रही है।

विशेष

(1) पद्य का भाव यह है कि घर के भोतर जलने वाले दीपक की जो रोशनी सेंध के माध्यम से बाहर पृथ्वी पर पतली रेखा के समान दिखाई दे रही है, उसकी वैसी ही शोभा हो रही है जैसे कसौटी पर खींची गई सोने की रेखा की होती है।

(2) पद्य में शिखा का रेखा साम्य प्रदर्शित किया गया है। अतः उपमा अलंकार है।

(3) इसमें वंशस्थ छन्द है।

29. निःश्वासोऽस्य न शंकितः सुविशदः तुल्यान्तरं वर्तते,
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे चञ्चला।

गात्रां स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शयाप्रमाणाधिकं,
दीपञ्चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि।।18।।

अन्वय – अस्य निःश्वासः, शंकितः न, (अपितु) सुविशदः तुल्यान्तरम् वर्तते, दृष्टिः गाढनिमीलिता (अस्ति) विकला न अभ्यन्तरे चंचला, न वर्तते, गात्राम्, स्त्रास्तशरीरसन्धि शिथिलं, शय्याप्रमाणाधिकं च (वर्तते), यदि लक्ष्य सुप्तम् स्यात् तदा अभिमुखम् दीपम् च अपि न मर्षयेत्।।18।।

कठिन–शब्दार्थ – निःश्वासः – सांस लेना। शंकितः – शंका युक्त। सुविशदः – साफ, साफ। तुल्यान्तरम् – समान अन्तर वाली। गाढ़निमीलिता – अच्छी प्रकार से बन्द है। विकला – व्याकुल। गात्राम् – शरीर। स्त्रस्तशरीरसन्धिशिथिलम् – शरीर की सन्धियों (जोड़ों) के ढीले होने से शिथिल। शय्याप्रमाणधिकम् – पलंग की लम्बाई–चौडाई से अधिक है। लक्ष्यसुप्तम् – बहाने से सोया हुआ। मर्षयेत् – सहन कर पाता।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' के तृतीय अंक से अवतरित है। सेंध लगाकर शर्विलक घर के भोतर प्रविष्ट हो जाता है। वहाँ दो व्यक्तियों को शयन करते हुये देखता है। वह दोनों की परीक्षा लेता है कि क्या वे वास्तव में सो रहे हैं या सोन का बहाना बनाकर सो रहे हैं। वह अन्त में वह इसी निर्णय पर पहुंचता है कि दोनों सो रहे हैं। इस सन्दभ में जो उसने तर्क दिये हैं वे इस श्लोक में प्रस्तुत हैंः–

व्याख्या – दोनों व्यक्तियों का सांस लेना शंका युक्त नहीं है, साफ–साफ है तथा इनमे समान अन्तर है समान अन्तराल से सांस ले रहे हैं। आंखे अच्छी प्रकार से बन्द हैं, न तो व्याकुल हैं और न भोतर चंचल हैं। शरीर के जोड़ों के ढीले हो जाने से शिथिल और शया (पलंग) के परिणाम की अपेक्षा अधिक अर्थात् पलंग से बाहर शरीर है तथा यदि बहाना बनाकर सोये हुये होते तो सामने जलते हुय दीपक को भो सहन नहीं कर पाते। अतः वास्तव में ही ये सोये हुये हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में सोते हुये व्यक्ति की स्वाभाविक स्थिति का अतीत सुन्दर एवं यथार्थ वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

(2) इसमें शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

30. **मार्जारः क्रमणे, मृगः प्रसरणे, श्येनो गृहालुञ्चने,**
सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्य तुलने श्वा, सर्पणे पन्नगः।
माया रूप–शरीर वेश–रचने, वाग्–देश–भाषान्तरे,
दीपो रात्रिाषु, संकटेषु डुडुभो, वाजी स्थले, नौर्जले।।20।।

अन्वय – (यः अहम्) क्रमणे मार्जारः, प्रसरणे मृगः, ग्रहालुञ्चने श्येनः, सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलन, श्वा, सर्पणे पन्नगः, रूपशरीरवेशरचने मायाः, देशभाषान्तरे वाक्, रात्रिषु दीपः, संकटेषु, डुडुभः, स्थले वाजी, जले नौ (अस्मि)।।20।।

कठिन–शब्दार्थ – क्रमणे – उछलने में। मार्जारः – बिलाव। प्रसरणे – शीघ्र गमन करने में। मृगः – हिरण। ग्रहालुञ्चने – पकडने तथा झपटने में। श्येनः – बाज। सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने – सोये हुये अथवा न सोये (जागते हुये) मनुष्य की शक्ति की जानकारी करने में। श्वा – कुत्ता। सर्पणे – सरकने में। पन्नगः – सर्प। रूप–शरीर–वेशरचने – आकार, शरीर और वेशभ्षा, इनको बदलने में। माया – इन्द्रजाल। देशभाषान्तरे – विभिन्न देशों की भाषा बोलने में। वाक् – सरस्वती। संकटेषु – संकट के समय में। डुडुभः – भडिया। स्थले – पृथ्वी पर। वाजी – घोडा। नौः – नाव।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक अपने गुणों एवं शक्ति का वर्णन कर रहा है। जैसे ही वह विदूषक के हाथ से सुवर्ण भाण्ड को लेता है तथा बाहर निकलने को तैयार होता है अचानक पांवों की आहट सुनाई देती है। वह पहरेदार की आशंका करता है तथा कुछ

समय चुपचाप खड़ा रहता है। फिर कहता है कि उसे पहरेदार से क्या भय है? क्योंकि उसमें ये सब विशेषतायें हैं।

व्याख्या – (जो मैं) उछालने म बिलाव, शीघ्र दौडने में हिरन, झपटकर पकडने तथा छीनने में बाज, सोते हुये तथा जागते हुये, दोनों प्रकार के पुरुषों की शक्ति का पता लगाने में कुत्ता, सरकने में सर्प, विभिन्न प्रकार के आकार शरीर और वेशभ्षा बनाने में, इन्द्रजाल–विद्या, भिन्न–भिन्न स्थानों की भाषा बोलने में सरस्वती, रात्रियों में दीपक, संकटों में भडिया, जमीन पर घोडा तथा पानी में नौका हूँ।

विशेष –

(1) शर्विलक ने इस पद्य में अपने सामर्थ्य का वर्णन किया है। जहाँ जैसा बन जाने पर काम हो सकता है वहाँ वैसा बनकर काम चलाना उसके लिए अति सरल है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में एक शर्विलक में ही तादात्म्य से मार्जार आदि का आरोप होने से मालारूपक अलंकार है।

(3) इसमें शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

31. उपरितलनिपातितेष्टकोऽयं
शिरसि तनुर्विपुलश्च मध्यदेशे।
असदृशजन सम्प्रयोगभीरो
हृदयमिव स्फुटितं महागृहस्य ।।22।।

अन्वय – उपरितल–निपातितेष्टकः, शिरसि तनुः, मध्यप्रदेशे च विपुलः अयम् (सन्धिः) असदृशजनसम्प्रयोगभोरोः, महागृहस्य, स्फुटितम् हृदयम् इव (दृश्यते) ।।

कठिन–शब्दार्थ – उपरितल–निपातितेष्टकः – उपर से हटा दी गई है ईटें जिससे ऐसी। तनुः – छोटी। विपुलः – चौडी। असदृशजन–सम्प्रयोगभोरोः – अनुचित व्यक्ति चोर आदि के आ जाने से भयभोत। महागृहस्य – विशाल भवन के। स्फुटितम् – फटे हुये।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्य मृच्छकटिकम् के तृतीय अंक से अवतरित है। प्रातःकाल विदूषक अपने मित्र को जानकारी देता है कि हे मित्र चारुदत्त! उठिये। हम लोगों के घर में चोर सेंध लगाकर निकल गया। चारुदत्त उस देखकर उसकी प्रशंसा करते हुये कहता है–

व्याख्या – जिसमें ऊपरी ओर ईटें हटाई गयी हैं, जो ऊपर की ओर छोटी तथा बीच में चौड़ी (अर्थात् घड़े के मुख तथा मध्यभाग के समान) यह सेंध, चोर आदि अनुचित व्यक्ति के प्रवेश करने के कारण डरे हुये विशाल भवन के फटे हुये हृदय के समान दिखाई पड़ रही है।

विशेष –

(1) इसमें सेंध के आकार–प्रकार का वर्णन किया गया है।

(2) सेंध फटने की तुलना किसी महान् व्यक्ति के हृदय के पफटने से की गई है।

(3) यहाँ अचेतन भवन में फोड़ी गई सेंध में विदीर्णवक्ष स्थलत्व की संभावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(4) इसमें पुष्पिताग्रा छन्द है।

32. कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति।
शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।।24।।

अन्वय – कः भ्तार्थम्, श्रद्धास्यति, सर्वःमाम् तुलयिष्यति, हि अस्मिन् लोके निष्प्रतापा दरिद्रता शंकनीया (भवति) ।।24।।

कठिन–शब्दार्थ – भ्तार्थम् – सत्य बात पर। श्रद्धास्यति – विश्वास करेगा। तुलयिष्यति – सन्देह करेंगे। निष्प्रतापा – प्रताप शून्य। शंकनीया – शंका करने योग्य।

प्रसंग – यह प्रकरण के तृतीय अंक से अवतरित है। जब विदूषक अपने मित्र चारुदत्त को बतलाता है कि चोर सुवर्ण भाण्ड को चुराकर ले गया है। तब उसे प्रसन्नता होती है कि वह उसक घर से खाली हाथ नहीं गया। परन्तु जब उसे पता चलता है कि वह धरोहर थी, वह मूर्च्छित हो जाता है। वह अपने मित्र से कहता है–

व्याख्या – कौन बीती हुई सत्य बात पर विश्वास करेगा। सभो मुझ पर सन्देह करेंगे, क्योंकि इस संसार में प्रताप शून्य निर्धनता सन्देह करने योग्य होती है, अर्थात् दरिद्र पर सभो लोग सन्देह करने लग जाते हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में उत्तरार्द्ध के सामान्य कथन से पूवार्द्ध के विशेष कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(2) इसमें अनुष्टुप् छन्द है।

33. विभवानुगता भार्या सुखदुःखसुहृद् भवान्।
सत्यञ्च न परिभ्रष्टं यद्दरिद्रेषु दुर्लभम्।।28।।

अन्वय – (यस्य मम) स्त्री, विभवानुगता, भवान् सुखदुःखसुहृत्, सत्यं च न परिभष्टम् यत् दरिद्रेषु दुर्लभम्।।28।।

कठिन–शब्दार्थ – विभवानुगता – विभव के अनुसार निर्वाह करने वाली। सुखदुःखसुहृत – सुख और दुःख के मित्र। परिभष्टम् – नष्ट। दुर्लभम् – कष्ट से मिलने वाली।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के तृतीय अंक से अवतरित है। इसमें चारुदत्त अपने को दरिद्र नहीं मानते हुये कह रहा है–

व्याख्या – जिस मेरी पली सम्पत्ति के अनुसार चलने वाली है, तुम्हारे जैसे सुख और दुःख के साथी मित्र हैं तथा सत्य ने साथ नहीं छोड़ा है, ये तीनों वस्तुएँ दरिद्रों में दुर्लभ होती हैं। मेरे पास क्योंकि ये तीनो विद्यमान हैं अतः मैं निर्धन नहीं हूँ।

विशेष –

(1) हर स्थिति में निर्वाह कर लेने वाली पली, हर दशा में साथ निभाने वाला मित्र तथा सत्य वचन की रक्षा, ये तीनों चारुदत्त अपने पास समझ रहा है। अतः वह दरिद्र नहीं है।

(2) इसमें उल्लेख अलंकार तथा पथ्यावक्त्रा छन्द है।

चतुर्थ अंक

34. दत्त्वा निशाया वचनीयदोषं,
निद्राञ्च जित्त्वा नृपतेश्च रक्ष्यान्।
स एष सूर्योदयमन्दरश्मिः
क्षपाक्षयाच्चन्द्र इवास्मि जातः।।4/1।।

अन्वय – निशायाः वचनीयदोषं दत्त्वा, निद्राम् च, नृपतेः रक्ष्यान् च जित्त्वा, सः एषः (अहम्) क्षपाक्षयात् सूर्योदयमन्दरश्मिः चन्द्रः इव जातः अस्मि।।4/1।।

कठिन–शब्दार्थ – निशायाः – रात्रि के। वचनीयदोषम् – निन्दा के दोष को। रक्ष्यान् – राजपुरुषों को। क्षपाक्षयात् – रात्रि के बीत जाने पर। सूर्योदयमन्दरश्मिः – सूर्य के उदित हो जाने के कारण मन्द किरणों वाले। जातः अस्मि – हो गया हूँ।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण के चतुर्थ अंक से अवतरित है। इसमें शर्विलक ने अपनी तुलना सूर्योदय होने पर मन्द किरणों वाले चन्द्रमा से की है–

व्याख्या – रात्रि को निन्दा का दोष देकर अर्थात् चोरी आदि निन्दित कार्य रात्रि में सम्पन्न होते हैं – ऐसा दोष देकर (अपनी) नींद को तथा राजा के सिपाहियों को जीतकर अर्थात्

उनसे बचकर, यह मैं सूर्योदय होने के कारण मन्द किरणों वाले चन्द्रमा के समान (कान्तिविहीन) हो गया हूँ।

विशेष –

(1) वचनीयदोषम् – रात्रि ही सम्पूर्ण अपराधों को कराती है, इस प्रकार की निन्दा को।

(2) प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

35. यः कश्चित्त्वरितगति र्निरीक्षते मां,
सम्भ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति स्थितं वा।
तं सर्व तुलयति दूषितोऽन्तरात्मा,
स्वैर्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः।।4/2।।

अन्वय – यः कश्चित् त्वरितगतिः (सन्) सम्भान्तः माम् निरीक्षते, वा स्थितम् (माम्) द्रुतम् उपसर्पति, दूषितः अन्तरात्मा तम् सर्वम्, तुलयति हि मनुष्यः स्वैः दोषैः शंकितः भवति।।

कठिन–शब्दार्थ – त्वरितगतिः – तेजी से चलने वाला । सम्भान्तम् – घबराये हुये। निरीक्षते – देखता हूँ । स्थितम् – छिपकर खड़े हुये। उपसर्पति – समीप आ जाता है। तुलयति – सन्देह की दृष्टि से तोलता है। शंकितः भवति – शंका ग्रस्त होता है।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। इसमें शर्विलक की मनःस्थिति का चित्रण किया गया है–

व्याख्या – जो कोई भो तीव्र गति से चलता हुआ (चोरी करने के कारण) घबराय हुये मुझे (शर्विलक को) देखता है, अथवा (छिपकर) खड़े हुये मेरे पास शीघ्रता से आता है, दोषी मेरा मन उन सबको शंकाग्रस्त होकर विचार करता है, क्योंकि मनुष्य अपने ही दोषों (अपराधों) के कारण शंकालु हो जाता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। क्योंकि यहाँ समीप में आने वाले पुरुषों आदि के द्वारा देखे जाने के कारण उत्पन्न हुई, शर्विलक की दशा विशेष का समर्थन चतुर्थ पाद के द्वारा किया गया है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।

36. मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती,
रतिरिव मूर्तिमती विभाति येयम्।
मम हृदयमनङ्गवह्निनतप्तं,
भृशमिव चन्दनशीतलं करोति।।4/4।।

अन्वय – या गुणैः मदनम् अपि विशेषयन्ती, मूर्तिमती, रतिः इव विभाति, (सा) इयम् अनंगवनितप्तम्, मम हृदयम् भशम् चन्दनशीतलम् इव करोति ।।4।।

कठिन–शब्दार्थ – मदनमपि – कामदेव को भो। विशेषयन्ती – जीतती हुई। मूर्तिमती – शरीरधरिणी। रतिः – कामदेव की पत्नी। विभाति – शोभित हो रही है। अनंगवनितप्तम् – कामरूपी अग्नि से सन्तप्त। भशम् – अत्यध्कि। चन्दनशीतलम् – चन्दन के समान शीतल।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। इसमें मदनिका को देखकर शर्विलक अपने विचार व्यक्त रहा हैः–

व्याख्या – जो (अपने सौन्दर्यादि) गुणों के द्वारा कामदेव को भो जीतती हुई (अर्थात् उससे भो अधिक सुन्दर) शरीर धरिणी रति के समान सुशोभित हो रही है। वही यह कामाग्नि से सन्तप्त मेरे हृदय को चन्दन के समान अत्यधिक शीतल कर रही है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक के पूवार्द्ध में मदनिका की मूर्तिमती रति के रूप में संभावना के कारण द्रव्योत्प्रेक्षा तथा बिना चन्दन के शीतल होने वाले हृदय में चन्दनशीतलता की संभावना के कारण गुणोत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) इस पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द है।

37. नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां,
विप्रस्वं न हरामि काचनमयो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम्।
धात्र्युत्संगगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्,
कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता।।14/6।।

अन्वय – धनार्थी अहम्, फुल्लाम् लताम् इव विभ्षणवतीम्, अबलाम् नो मुष्णामि, विप्रस्वम् अथो यज्ञार्थम् अभ्युद्धृतम् कांचनम् न हरामि, तथा क्वचित् धत्रयुत्संगगतम् बालम् न हरामि, चौर्ये अपि मम मतिः नित्यम् कार्याकार्यविचारिणी (एव) स्थिता।।6।।

कठिन–शब्दार्थ – धनार्थी – धन पाने का इच्छुक। फुल्लाम् – फुली हुई, फूलों के भार से युक्त। विभ्षणवतीम् – आभ्षणों से अलंकृत। मुष्णामि – चुराता हूँ। विप्रस्वम् – ब्राह्मण का धन। अभ्युद्धृतम् – सुरक्षित रखे गये। काचनम् – स्वर्णादि को। धात्र्युत्संगगतम् – धाय को गोद में स्थित। चौर्ये – चोरी में। कार्याकार्यविचारिणी – कतव्य तथा अकतव्य का विचार करने वाली। स्थिता – रहती ह।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। चारुदत्त के घर से सुवर्णभाण्ड की चोरी करके शर्विलक मदनिका के पास आ जाता है। चोरी करते समय भो वह कुछ बातें अपने ध्यान में रखता है, उनकी ओर इस श्लोक में संकेत किया गया है–

व्याख्या – धन का इच्छुक मैं फूलों से युक्त लता के समान आभ्षणों से सुसज्जित स्त्री को नहीं चुराता हूँ, उसके आभ्षण नहीं लूटता हूँ। ब्राह्मण के धन को तथा यज्ञादि कार्यों के लिए संचित स्वर्ण को नहीं चुराता हूँ। कहीं भो धय की गोद में स्थित बच्चे को नहीं चुराता हूँ अर्थात् उससे छीनकर नहीं ले जाता हूँ। चोरी में भो मेरी बुद्धि सदैव कतव्य तथा अकतव्य (उचित एवं अनुचित) का विचार करने वाली ही रहती है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में तत्कालीन चोरों की मर्यादाओं की ओर संकेत किया गया है।

(2) इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि शर्विलक ने यद्यपि चोरी तो की है परन्तु सोच समझकर की है। वह अपने किये गये कार्य से सन्तुष्ट है।

(3) इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

38. त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं,
सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कूले प्रसूतः।
रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं,
मित्रस्य मां व्यपदिशस्यपरञ्च यासि।।4/9।।

अन्वय – सद्वृत्तपूर्वपुरुषे कुले प्रसूतः अपि (अहम्) त्वतस्नेहबद्दहृदयः हि अकार्यम् करोमि, मन्मथविपन्नगुणः अपि मानम् रक्षामि (किन्तु, त्वम्) माम् मित्राम् व्यपदिशसि च अपरम् च यासि।।9।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। शर्विलक मदनिका से सुवर्ण भाण्ड की चोरी के वृतान्त को सुनाता है। चारुदत्त के घर से वह चुराया गया है, यह जानकर वह दुःखी होती है तथा उसके मन में यह भो आशंका होती है कि उसने किसी को मारा या घायल तो नहीं किया है। जब शर्विलक बतलाता है कि वह भयभोत तथा सोये हुये व्यक्ति पर कभो प्रहार नहीं करता ह। तब मदनिका चैन की सांस लेती है। इस प्रसंग में शर्विलक के मन में ईर्ष्याभाव उत्पन्न हो जाता है तथा वह कहता है–

व्याख्या – सदाचारी पूर्वजों के उच्चकुल (ब्राह्मण वंश) में जन्म लेने वाला भो मैं तुम्हारे प्रेम में आसक्त ह्रदय वाला होकर चोरी आदि अनुचित कार्य कर रहा हूँ। कामभाव के कारण गुणविहीन होता हुआ भो अपने गौरव की रक्षा करता हूँ। किन्तु तुम मुझे अपना मित्र कह रही हो तथा दूसरे मनुष्य (चारुदत्त) के पास भो जा रही हो।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक का स्वाभिमान व्यक्त हुआ है। वह मदनिका को डाटने लगता है। वह उसे कहता है कि तुम बाहरी प्रेम प्रकट करके मुझे मूर्ख बना रही हो। जब कि ह्रदय से तुम किसी अन्य पुरूष (चारुदत्त) से प्रेम करती हो। इसीलिये चारुदत्त के अप्रिय की संभावना से तुम मूर्च्छित हो गई तथा उसका अनिष्ट न जानकर 'अच्छा हुआ' कहकर प्रसन्नता व्यक्त कर रही हो।

(2) प्रस्तुत श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

39. एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो
विश्वासयन्ति पुरूषं न तु विश्वसन्ति।।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशान–सुमना इव वर्जनीयाः।।4/14।।

अन्वय – एताः, वित्तहेतोः हसन्ति च रुदन्ति, च पुरुषम् विश्वासयन्ति तु, न, विश्वसन्ति। तस्मात् कुलशीलसमन्वितेन नरेण श्मशानसुमना इव वेश्याः वर्जनीयाः।।14।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। प्रस्तुत श्लोक में शर्विलक ने अपने वेश्या सम्बन्धी विचारों को व्यक्त किया है–

व्याख्या – ये (वेश्यायें) धन के निमित्त ही (प्रेमी के प्रति) हंसती तथा रोती हैं। अर्थात् इनका मूल उद्देश्य धन कमाना होता है। पुरुष को (अपने ऊपर) विश्वास दिलाती हैं परन्तु स्वयं पुरुषों पर विश्वास नहीं करती हैं। अतः उत्तम कुल एवं स्वभाव वाले पुरुषों को वेश्याओं का परित्याग श्मशानस्थल पर लगे हुये फूलों के समान कर देना चाहिए।

विशेष –

(1) शर्विलक के कहने का भाव यह है कि उच्च कुलीन व्यक्ति को वेश्याओं के चक्कर में नहीं आना चाहिए। उसकी दृष्टि में वेश्याओं के सारे क्रिया–कलाप धन प्राप्ति के लिये ही होते हैं। अतः इनके हंसने या रोने के चक्कर में नहीं फंसना चाहिए।

(2) 'वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः' यहाँ उपमा अलंकार है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

40. स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणान्तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।।4/19।।

अन्वय – एताः स्त्रियः हि निसर्गात् एव पण्डिताः खलु, नाम तु पुरुषाणाम् पाण्डित्यम् शास्त्रौः एव उपदिश्यते।।19।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। शर्विलक एवं मदनिका के बीच वार्तालाप चल रहा है। अन्त में शर्विलक भो यह सहमति व्यक्त करता है कि उसने चोरी करके अच्छा नहीं किया। परन्तु अब क्या करना चाहिये, इस पर दोनो एक दूसरे से पूछते हैं। तब शर्विलक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहता है कि स्त्री जाति पुरूषों की तुलना में अधिक चतुर होती हैं।

व्याख्या – ये स्त्रियाँ जन्म से ही अथवा स्वभाव से ही चतुर होती हैं। किन्तु पुरुष की चतुरता तो शास्त्रों के द्वारा ही सिखाई जाती है। भाव यह है कि स्त्रियाँ बिना सिखाये ही चतुर होती हैं परन्तु पुरुष सिखाये जाने के बाद ही चतुर हो पाते हैं।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में पुरुष एवं स्त्री के चातुर्य के विषय में सुन्दर विवेचन किया गया है।

(2) इसमें पथ्यावक्त्रा छन्द है।

41. न खलु मम विषादः साहसेऽस्मिन् भयं वा,
कथयसि हि किमर्थं तस्य साधेर्गुणांस्त्वम्।
जनयति मम वेदं कुत्सितं कम लज्जां,
नृपतिरिह शठानां मादृशां किं नु कुर्यात्।।4/20।।

अन्वय – अस्मिन् साहसे मम विषादः भयं वा न खलु (अस्ति), त्वम् तस्य साधेः गुणान् कथं कथयसि? हि, इदम्, कुत्सितम् कम वा मम लज्जाम् जनयति। इह नृपतिः मादृशाम् शठानाम् किम् नु कुर्यात्।।

कठिन–शब्दार्थ – साहसे – दुस्साहसिक चौर्य कार्य में। कुत्सितम् – निन्दित चोरी का कार्य। जनयति – उत्पन्न करता है। मादृशाम् – हमारे जैसे। शठानाम् – धूर्तों का।

प्रसंग – यह श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। शर्विलक मदनिका के समक्ष अपनी वस्तुस्थिति व्यक्त करता हुआ कह रहा है–

व्याख्या – इस दुस्साहसिक (चोरी के) कम में, वास्तव में, न तो किसी प्रकार का खेद (पश्चाताप) है और न (राजा के दण्ड का) भय है। इस स्थिति में तुम उन सज्जन चारुदत्त के गुणों का वर्णन क्यों कर रही हो? क्योंकि यह चोरी करना कुत्सित कार्य ही मेरे में लज्जा भाव उत्पन्न कर रहा है। इस विषय में मेरे जैसे धूर्तों का राजा क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ भो नहीं कर सकता है।

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

42. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो,
न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम्।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोर,
रलङ्घ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम्।।4/23।।

अन्वय – पुरुषेण गुणेषु यत्नः कार्यः गुणानाम् किंचित् अपि अप्राप्यतमम् न (भवति), उडुपेन शम्भोः अलंघ्यम् उत्तमांगम् गुणप्रकर्षात् लंघितम्।।23।।

कठिन–शब्दार्थ – अप्राप्यतमम् – दुर्लभ, प्राप्त करना कठिन। उडुपेन – चन्द्रमा ने। उत्तमांगम् – मस्तक को। गुणप्रकर्षात् – गुणों के प्रकष के कारण। लधितम् – लांघ किया।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के चतुर्थ अंक से अवतरित है। शर्विलक इसमें चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा कर रहा है–

व्याख्या – पुरुष को (दया दाक्षिण्यादि) गुणों के विषय में प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि गुणों को कोई भो वस्तु प्राप्त करना कठिन नहीं है अर्थात् गुणवान् व्यक्ति सब कुछ प्राप्त कर सकता है। चन्द्रमा ने शंकर के अलंघनीय मस्तक को गुणों के आधिक्य के कारण ही लांघ लिया अर्थात् शिवजी के मस्तक पर जाकर स्थित हो गया।

विशेष –

(1) भगवान् शिव सर्वोपरि हैं। उनके अंगो में उनका मस्तक सर्वोपरि है। परन्तु चन्द्रमा उस मस्तक के भो ऊपर विद्यमान है। इसमें चन्द्रमा के गुणों का प्रकष ही कारण है। इस प्रकार गुणीजन की श्रेष्ठता स्पष्ट है।

(2) प्रस्तुत श्लोक में विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

43. ज्ञातीन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्,
राजापमानकुपितांश्च नरेन्द्रभृत्यान्।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय्,
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः।।4/26।।

अन्वय – उदयनस्य राज्ञः यौगन्धरायणः इव सुहृदःपरिमोक्षणाय (अहम्) ज्ञातीन्, विटान्, स्वभजविक्रमलब्धवर्णान्, राजापमानकुपितान्, नरेन्द्रभत्यान् च उत्तेजयामि।।26।।

कठिन–शब्दार्थ – परिमोक्षणाय – मुक्ति के लिये। ज्ञातीन् – कुल के बन्धुबान्धवों। विटान् – विटों, धूर्तों को। स्वभजविक्रमलब्धवर्णान् – अपनी भजाओं के पराक्रम से यश प्राप्त करने वालों को। राजापमानकुपितान् – राजा द्वारा किये अपमान से क्र। नरेन्द्रभत्यान – राजा के कमचारियों को। उत्तेजयामि – उत्तेजित करता हूँ।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक प्रकरण के चतुर्थ अंक से उद्धृत है। इसमें शर्विलक की अपने मित्र आर्यक के प्रति घनिष्ठ मैत्री व्यक्त हुई है। जब वह सुनता है कि राजा पालक ने प्रिय मित्र आर्यक को जेल में बन्द कर दिया है। तब वह पत्नी को तुलना में मित्र को अधिक महत्त्व देता हुआ कहता है कि इस समय सैकड़ों सुन्दर स्त्रियों से भो मित्र अधिक प्रिय है। इसी क्रम में वह आगे कहता है–

व्याख्या – (मैं इस समय) उदयन (वत्सराज) नामक राजा की (मुक्ति के लिये) उनके महामात्य
यौगन्धरायण के समान मित्र आर्यक को छुड़ाने के लिये (राजा पालक के) बन्धुओं, अपनी भजाओं के पराक्रम से यश प्राप्त करने वालों तथा राजा द्वारा किये गये अपमान से क्रुर कमचारियों को (राजा के विरु) उत्तेजित करता हूँ, उकसाता हूँ।

विशेष –

(1) पुराणों में यह कथा प्राप्त होती है कि वत्सराज उदयन की उज्जयिनी के राजा चन्द्रसन ने कारागार में बन्द कर दिया था। तब उदयन के महामात्य यौगन्धरायण ने अपने बुधिकौशल से प्रजा में विद्रोह उत्पन्न कराकर अपने राजा उदयन को मुक्त कराया था। शर्विलक भो अपने मित्र तथा भविष्य में राजा होने वाले पालक की मुक्ति इसी प्रकार कराना चाहता है।

(2) इसमें उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

44. प्रियसुहृदमकारणे गृहीतं,
रिपुभिरसाधुभराहितात्मशंकैः।
सरभसमभिपत्य मोचयामि,
स्थितमिव राहुमुखे शशाङ्कबिम्बम्।।4/27।।

अन्वय – अकारणे, आहितात्मशंकैः असाधुभिः, रिपुभिः, गृहीतम् राहुमुखे स्थितम्, शशाङ्कबिम्बम्, इव प्रियसुहृदम्, सरभसम् अभिपत्य मोचयामि।।4/27।।

कठिन–शब्दार्थ – अकारेण – कोई कारण न रहने पर भो। आहितात्मशंकैः – अपने में भय बना लेने वाले। गृहीतम् – कारागार मे बन्द किये गये। शशांकबिम्बम् – चन्द्रमण्डल। सरभसम् – वेगपूर्वक। अभिपत्य – आक्रमण करके। मोचयामि – छुड़वाता हूँ, मुक्त करवाता हूँ।

प्रसंग – यह कथन शर्विलक का है। वह अपने मित्र आर्यक को शीघ्र कारागार से मुक्त करवाने की घोषणा इस श्लोक में कर रहा है–

व्याख्या – कोई कारण न रहने पर भो अपने में भय मानने वाले दुष्ट शत्रुओं द्वारा बन्धन में डाले गये, राहु के मुख में विद्यमान चन्द्रमा के समान, अपने प्रिय मित्र को वेगपूर्वक आक्रमण करके कारागार से मुक्त कराता हूँ।

विशेष –

(1) प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है।

पंचम अंक

45. आलोकितं गृहशिखण्डिभिरुत्कलापैः
हंसैर्यियासुभि रपाकृतमुन्मनस्कैः।
आकालिकं सपदि दुर्दिनमन्तरिक्ष
मुत्कण्ठितस्य हृदयञ्च समं रुणद्धि।।5/1।।

अन्वय – उत्कलापैः गृहशिखण्डिभिः आलोकितम्, यियासुभिः उन्मनस्कैः हंसैः अपाकृतम्, आकालिकम्, दुर्दिनम्, सपदि अन्तरिक्षम् उत्कण्ठितस्य हृदयम् च समम् रुणा।।1।।

कठिन–शब्दार्थ – उत्कलापैः – पंखों के ऊपर पङ्खैलाये हुये। गृहशिखण्डिभिः – घरेलू पालतू मोरों द्वारा। आलोकितम् – देखा गया। यियासुभिः – (मानसरोवर) जाने के इच्छुक। उन्मनस्कैः – खिन्न मन वाले। अपाकृतम् – तिरस्कृत किया गया। आकालिकम् – असमय में होने वाला। सपदि – शीघ्र ही। उत्कण्ठितस्य – विरहातुर व्यक्ति के। रुणद्धि – आवृत्त कर रहा है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पचम अंक से उद्धृत है। इसमें नायक चारुदत्त ऊपर आकाश की ओर देखकर अपने विचार व्यक्त कर रहा है–

व्याख्या – पंखों के ऊपर फलाये हुये मयूरों द्वारा देखा गया, (मानसरोवर) जाने के इच्छुक उदास हंसों द्वारा तिरस्कृत किया गया, असमय का यह दुर्दिन (बादलों से आच्छादित दिन) शीघ्र ही आकाश तथा विरही व्यक्ति के हृदय को एक साथ आच्छादित कर रहा है।

विशेष –

(1) विरही व्यक्ति की कामवृद्धि में वर्षा का विशेष योग रहता है। प्रस्तुत श्लोक में विरही चारुदत्त दुर्दिन से प्रभावित हो रहा है।

(2) दुर्दिनम् – 'मेघाच्छन्नं तु दुर्दिनम्' कोश के अनुसार बादलों से घिरा हुआ दिन दुर्दिन होता है। परन्तु प्रस्तुत श्लोक में केवल मेघ अर्थ करना चाहिए क्योंकि मेघ ही आकाश तथा चित्त दोनों को आच्छादित करता है।

46. मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्ग नीलो,
विद्युत्प्रभा–रचित–पीत–पटोत्तरीयः।
आभाति संहतबलाक–गृहोतशंखः,
एवं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः।।5/2।।

अन्वय – जलार्द्रमहिषोदरभगनीलः विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः संहतबलाकगृहीतशंखः, अपरः केशवः इव एवम् आक्रमितुं प्रवृत्तः मेघः आभाति।।2।।

कठिन–शब्दार्थ – जलार्द्रमहिषोदरभगनीलः – जल से गीले किये गये भसे के पेट तथा भाँरे के समान नीले वर्णवाला। विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः – बिजली की चमक से बने हुये पीले दुपट्टे वाला। संहतबलाकगृहीतशंखः – एक साथ चलने वाले बगुलों की पंक्तिरुपी शंख को लेने वाला। केशवः – श्रीकृष्ण या विष्णु। एवम् – आकाश को। आक्रमितुम् – लांघने के लिये। प्रवृत्तः – सन्न। आभाति – शोभित हो रहा है।

प्रसंग – यह श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण के पंचम अंक से अवतरित है। इसमें मेघ का वर्णन वामन रूपधारी विष्णु के समान किया गया है–

व्याख्या – जल से गीले किये गये भसे के पेट तथा भाँरे के समान काला, बिजली की चमक से बने हुये पीले वस्त्र के दुपट्टे को धारण करने वाला (विष्णु पक्ष में – बिजली की कान्ति के समान बने हुये पीताम्बर के दुपट्टे वाले) एकत्रित बगुलों की पंक्तिरूपी शंख वाला (विष्णु पक्ष में – एकत्रित हुये बगुलों की पंक्ति के समान शंख को धारण करने वाले) दूसरे (वामनरूपधरी) विष्णु के तुल्य, आकाश को लांघने के लिये तैयार मेघ शोभित हो रहा है।

विशेष –

(1) पौराणिक कथानुसार वामन रूप में विष्णु ने आकाशपर्यन्त पैर से नाप लिया था।

(2) प्रस्तुत श्लोक में वामनरूपधारी विष्णु के साथ मेघ की सुन्दर उपमा प्रस्तुत की गई है।

(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

47. एतत्तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं, मेघान्धकारं नभो,
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो,
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः।।5/6।।

अन्वय – मेघान्धकारं एतत् नभः तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशम् (अस्ति), अतिदर्पितबलः शिखी, दुर्योधन वाहृष्टः (सन्) गर्जति, कोकिलः, अक्षद्यूतजितः युधिष्ठिरः इव अध्वानम् गतः, सम्प्रति हंसाः पाण्डवाः इव वनात् अज्ञातचर्याम् गताः।।6।।

कठिन–शब्दार्थ – मेघान्धकारम् – मेघों के कारण अन्धकार युक्त। तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशम् – उस धृतराष्ट्र के मुख के समान। अतिदर्पितबलः – अपने रूप के घमण्डवाला। शिखी – मोर। दुर्योधन पक्ष में – अत्यन्त अभिमान युक्त सेना वाला। हृष्टः – प्रसन्न। गर्जति – गर्जना कर रहा है, शब्द कर रहा है। अक्षद्यूतजितः – पासे के खेल में पराजित। अध्वानम् – मौन, वनमार्ग। अज्ञातचर्याम् – अज्ञातवास को।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें दुर्योध्न के कुशासन की तुलना वर्षा के साथ की गई है–

व्याख्या – बादलों के कारण अन्धकारयुक्त यह आकाश धृतराष्ट्र (दुर्योधन के पिता) के मुख के समान है। (आंखों से रहित धृतराष्ट्र का मख तथा चन्द्रसूर्य रहित आकाश इन दोनों की तुलना की गई है।) अपने रूप के घमण्ड वाला मोर (दुर्योधन पक्ष में अति–घमण्डी सेना वाला) दुर्योधन के समान प्रसन्न होता हुआ शब्द कर रहा है। कोयल जुए में हारे हुये युधिष्ठिर के समान मौन (युधिष्ठिर पक्ष में–वनमार्ग) को प्राप्त हो गई है। इस वर्षाऋतु में हंस पाण्डवों के समान वन (हंस पक्ष में पानी) से अज्ञातवास को चले गये हैं। (अर्थात् वन से जैसे पाण्डव अज्ञात स्थान पर चले गये थे उसी प्रकार यहाँ से वन–जल को छोड़कर हंस मानसरोवर चले गये हैं।)

विशेष –

(1) प्रस्तुत श्लोक के प्रारंभ में जन्मान्ध धृतराष्ट्र तथा चन्द्रसूर्यरहित आकाश की सुन्दर उपमा है।

(2) सम्पूर्ण श्लोक में उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

48. वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं,
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः,
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ।।5/8।।

अन्वय – तुरगः त्वरितम् प्रयातुम् वेगम् करोति, तु प्राणव्ययात् तस्य चरणाः तथा न वहन्ति (एवमेव) पुरुषस्य चलाः स्वभावाः सर्वत्रा यान्ति (परन्तु) ततः खिन्नाः पुनः हृदयम् एव विशन्ति।।

कठिन–शब्दार्थ – तुरगः – घोड़ा। त्वरितम् – शीघ्र ही। प्रयातुम् – दौडने के लिये। प्राणव्ययात् – शक्तिक्षीणता के कारण। विशन्ति – प्रवेश कर जाती है, वापस लौट आते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पचम अंक से उद्धृत है, यह कथन चारुदत्त का है। विदूषक द्वारा यह कहने पर कि आप वेश्यासंसर्ग से अपने को मुक्त कर

लीजिये। वेश्या तो जूते में पड़ी हुई कंकडी के समान बाद में बहुत कष्ट से निकाली जाती है। तब चारुदत्त कहता है– मित्र ! इस समय निन्दा करना व्यर्थ है। निर्धन अवस्था ने ही वेश्या संगति से रोक दिया है। देखो –

व्याख्या – घोडा शीघ्र दौडने के लिये वेग (शक्ति) लगाता है, परन्तु शक्ति क्षीणता के कारण पैर उस प्रकार वेग से नहीं चलते हैं, इसी प्रकार मनुष्य के चंचल स्वभाव (मनोवृत्तियाँ) सभो ओर जाते हैं, परन्तु (कहीं भो सपफल न हो सकने के कारण) निराश होकर पुनः मन में ही वापस लौट आते हैं।

विशेष –

(1) चारुदत्त के कहने का भाव यह है कि हमारी निर्धनता के कारण ही वेश्यासंसर्ग छूट जायेगा, अतः उसकी निन्दा करने का कोई लाभ नहीं है।

(2) इसमें दृष्टान्त अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

49. अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं,
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जा–प्रणयिनी,
रतिक्षेत्रे रंगे प्रियपथिकसार्थैरनुगता।।5/12।।

अन्वय – रतिसमयलज्जाप्रणयिनी, प्रियपथिकसार्थैः अनुगता रंगे (इव) रतिक्षेत्रे सलीलम् गच्छन्ती एषा अपद्मा श्रीः अनंगस्य ललितम् प्रहरणम्, कुलस्त्रीणां शोकः, मदनवरवृक्षस्य कुसुमम् (अस्ति)।।12।।

कठिन–शब्दार्थ – रतिसमयलज्जाप्रणयिनी – संभोग काल में (बनावटी) लज्जा प्रदर्शित करने वाली। प्रियपथिकसार्थैः – प्रिय पथिकों के समूहों के द्वारा। अनुगता – पीछा की गई। रंगे – नाट्य रंगमंच। रतिक्षेत्रो – संकेतित रतिस्थल पर। सलीलम् – हावभाव के साथ। अपद्मा – बिना कमल की। अनंगस्य – कामदेव का। ललितम् – सुन्दर। प्रहरणम् – अस्त्र। मदनवरवृक्षस्य – कामदेव रूपी क्षेष्ठ वृक्ष का।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें विट वसन्तसेना को लक्षित करके कह रहा है–

व्याख्या – संभोग के समय (बनावटी) लज्जा प्रदर्शित करने वाली, प्रिय पथिकों से पीछा की गई, नाट्य रंगमंच के समान संकेतित रतिस्थल पर हावभाव के साथ जाने वाली यह वसन्तसेना बिना कमल की लक्ष्मी है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, उच्च कुलोत्पन्न वधुओं के लिए शोक है, कामरूपी सुन्दर वृक्ष का फूल है।

विशेष –

(1) यहाँ विषय का अपनव किये बिना ही एक वसन्तसेना में अनेकों के तादात्म्य का आरोप होने से मालारूपक अलंकार है।

(2) इसमें शिखरिणी छन्द है।

50. पंकक्लिन्नमुखाः पिबन्ति सलिलं धाराहता दर्दुराः,
कण्ठं मुञ्चति बर्हिणः समदनो नीपः प्रदीपायते।
संन्यासः कुलदूषणैरिव जनैर्मेघैर्वृतश्चन्द्रमा,
विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्रा सन्तिष्ठते।।5/14।।

अन्वय – धाराहताः पंकक्लिन्नमुखाः दुर्दराः सलिलम् पिबन्ति, समदनः बर्हिणः कण्ठम् मुंचति, नीपः प्रदीपायते, कुलदूषणैः जनैः सन्यासः इव मेघैः चन्द्रमाः वृतः नीचकुलोद्गता युवतिः इव विद्युत् एकत्रा न सन्तिष्ठते।।14।।

कठिन–शब्दार्थ – धाराहताः – जलधाराओं से ताडित। पंकक्लिन्नमुखाः – कीचड़ में व्याप्त मुख वाले। दर्दुराः – मेढ़क। समदनः – कामातुर। बर्हिणः – मोर। प्रदीपायते –

दीपक के समान प्रतीत हो रहा है। वृतः – ढक दिया गया है। नीचकुलाद्गता – नीच कुल में उत्पन्न होने वाली। सन्तिष्ठते – स्थिर रह रही है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में दुर्दिन के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण किया गया है। विट वसन्तसेना को सम्बोधित करते हुये कह रहा है–

व्याख्या – (हे वसन्तसेने! देखो) जल की धराओं से ताडित, कीचड़ से लिप्त मुखवाले मेढक (वर्षा का) पानी पी रहे हैं। कामातुर मयूर आवाज कर रहा है। कदम्ब का वृक्ष (अपने फूलों से) दीपक के समान प्रतीत हो रहा है। कुल को कलंकित करने वाले लोगों के द्वारा संन्यास के समान बादलों के द्वारा चन्द्रमा को ढक लिया गया है। नीच कुल में पैदा होने वाली स्त्री जैसे एक जगह नहीं ठहरती है उसी प्रकार बिजली एक जगह नहीं ठहर रही है।

विशेष –

(1) इसमें उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रिडित छन्द है।

51. गता नाशं तारा उपकृतमसाधविव जने
वियुक्ताः कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः।
प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपति शस्त्रस्य शिखिना
द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम्।।5/25।।

अन्वय – असाधौ जने उपकृतम् इव तारा नाशम् गता, कान्तेन वियुक्ताः स्त्रियः इव ककुभः न राजन्ति, त्रिादशपतिशस्त्रस्य शिखिना प्रकामान्तस्तप्तम्, गगनम् द्रवीभ्तम् (सत्) जलरूपेण पतति, मन्ये।।25।।

कठिन–शब्दार्थ – असाधौ – दुष्ट। उपकृतम् इव – उपकार के समान। वियुक्ताः – पतियों से रहित। ककुभः – दिशायें। राजन्ति – शोभित हो रही हैं। त्रिदशपतिशस्त्रस्य – देवराज इन्द्र के शस्त्राभ्त वज्र की। शिखिना – आग से। प्रकामान्तस्तप्तम् – अत्यन्त सन्तप्त। द्रवीभ्तम् – पिघला। पतति – गिर रहा है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें वसन्तसेना द्वारा रात्रि का वर्णन किया गया है–

व्याख्या – दुर्जन व्यक्ति के विषय में किये गये उपकार के समान तारागण (आकाश से) विलीन हो गये है अर्थात् लुप्त हो गये हैं। पतियों से रहित स्त्रियों के समान दिशायें शोभित नहीं हो रही हैं। देवराज इन्द्र के वज्ररूपी शस्त्र की आग से भोतर अत्यन्त सन्तप्त यह मेघ पिघला हुआ होकर मानो जलरूप में गिर रहा है।

विशेष –

(1) कृतघ्न दुर्जन पुरूष के लिए वस्तुतः कोई उपकार किया जाने पर भो वह उसे नहीं मानता है। वह उस उपकार को भ्ल जाता है। उसी प्रकार आकाश में तारों का समूह है तथापि अत्यधिक अंधकार होने के कारण उनका अस्तित्व समाप्त सा प्रतीत होने लगता है।

(2) इसमें उपमा व उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है। शिखरिणी छन्द है।

52. ऐरावतोरसि चलेव स॒वर्णरज्जुः
शैलस्य मूर्ध्नि निहितेव सिता पताका।
आखण्डलस्य भवनोदरदीपिकेय
माख्याति ते प्रियतमस्य हि सन्निवेशम्।।5/33।।

अन्वय – हि, ऐरावतोरसि, चला, सुवर्णरज्जुः इव शैलस्य मूर्ध्नि निहिता, सिता पताका इव आखण्डलस्य भवनोदरदीपिका इव (इयम्) ते, प्रियतमस्य, सन्निवेशम्, आख्याति इव।।33।।

कठिन–शब्दार्थ – ऐरावतोरसि – इन्द्र के हाथी ऐरावत के वक्षस्थल पर। सुवर्णरज्जुः – सोने की रस्सी। निहिता – स्थापित की गई। सिता – श्वेत। पताका – ध्वजा।

आखण्डलस्य – इन्द्र के। भवनोदरदीपिका – भवन के मध्य में स्थित दीपिका। सन्निवेशम् – घर को। आख्याति – कह रही है।

प्रसंग – यह श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें विट वसन्तसेना से कह रहा है कि वे बिजली को उपालंभ न दें क्योंकि यह बिजली आपकी उपकारिका है–

व्याख्या – क्योंकि, ऐरावत हाथी के वक्षस्थल पर चंचल सुवर्णमयी रस्सी के समान, पर्वत की चोटी पर स्थापित की गई श्वेत पताका के समान, इन्द्र के भवन के भोतर स्थित दीपिका के समान यह बिजली तुम्हारे प्रियतम चारुदत्त के घर को बतला रही है।

विशेष –

(1) इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

53. **सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः**
सदा च मे निश्वसतो गता निशा।
त्वया समेतस्य विशाललोचने
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः।।5/37।।

अन्वय – सदा जाग्रतः (एव) मम प्रदोषः याति, सदा निश्वसतः (एव) मे निशाः गताः, हे विशाललोचने! अद्य त्वया समेतस्य मम प्रदोषकः शोकान्तकरः (भवति भविष्यति वा)।।37।।

कठिन–शब्दार्थ – जाग्रतः एव – जागते हुये ही। प्रदोषः – सायंकाल का समय। याति – व्यतीत होता है। निःश्वसतः – निश्वासें, आहें लेते हुये ही। निशाः – रात्रियाँ। गताः – व्यतीत हुई हैं। विशाललोचने – हे विशाल नेत्रों वाली प्रिय वसन्तसेने। समेतस्य – मिले हुये। प्रदोषकः – सायंकाल। शोकान्तकरः – शोक को समाप्त कर देने वाला।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। वसन्तसेना को आई हुई देखकर चारुदत्त प्रसन्न हो उठता है तथा अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करता है–

व्याख्या – हमेशा जागते हुये ही मेरा प्रदोष (शाम का समय) व्यतीत हुआ है, तथा हमेशा आहें भरते हुये ही रातें व्यतोत हुई हैं। (परन्तु) हे विशाललोचने, वसन्तसेने! आज तुम्हारे साथ मिलने वाले मेरा प्रदोष (सायंकाल) शोकों को समाप्त कर देने वाला हो रहा है, अथवा होगा। अर्थात् आज का प्रदोष तुम्हारे आगमन से सुन्दर बन पड़ा है।

विशेष –

(1) इस श्लोक में अपनी सायंकालीन तथा सम्पूण रात्रिकालीन व्यथा का उल्लेख करके आज उनसे मुक्ति का संकेत चारुदत्त कर रहा है।

(2) इसमें वंशस्य छन्द है।

54. **धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके,**
किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्,
कोपप्रसादा विपफलीभवन्ति।।5/40।।

अन्वय – लोके, धनैः वियुक्तस्य नरस्य आदितः एव जीवितेन किम्, तावत् यस्य कोपप्रसादाः प्रतीकारनिरर्थकत्वात् विपफलीभवन्ति।।40।।

कठिन–शब्दार्थ – वियुक्तस्य – रहित। आदितः – प्रारंभ से ही अर्थात् जन्म समय से ही। जीवितेन – जीवित रहने से। कोपप्रसादा – क्रोध एवं प्रसन्नता। प्रतीकारनिरर्थकत्यात् – प्रतीकार में समर्थ न होने के कारण। विपफलीभवन्ति – बेकार हो जाते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से अवतरित है। चेटी वसन्तसेना द्वारा लाये गये सुवर्णभाण्ड के विषय में चारुदत्त को सूचना देती है। चारुदत्त उसे पुरस्कार के

रूप में अंगूठी देना चाहता है परन्त अंगूठीशून्य हाथ को देखकर लज्जा का अभिनय करता है। वह हाथ की ओट में अपने मित्र से इस प्रकार कहता है–

व्याख्या – संसार में धनविहीन व्यक्ति के जन्म से ही लेकर जीवित रहने का क्या लाभ! अर्थात् कुछ भो लाभ नहीं है। जिसकी प्रसन्नता तथा क्रोध दोनों ही बदला चुकाने में असमर्थ होने के कारण व्यर्थ हो जाते हैं। भाव यह है कि धनहीन व्यक्ति प्रसन्न होकर कुछ दे नहीं सकता है तथा अप्रसन्न या कुद्ध होकर कुछ बिगाड़ नहीं सकता है।

विशेष –

(1) चेटी के मुख से अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर अपनी प्रकृति के अनुसार तत्काल पुरस्कृत करना चाहते हुये भो चारुदत्त जब अपनी निर्धनता को देखता है तो उसे लगता है कि ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है। धनहीन जीवन व्यर्थ है।

(2) इसमें उपजाति छन्द है।

55. **शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषाः दरिद्राः**
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः।
यद् दृष्टपूर्व–जन–संगम विस्मृताना
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः।।5/42।।

अन्वय – दरिद्रा पुरुषाः शून्यैः गृहैः तोयरहितैः कूपैः च शीर्णैः तरुभिः च समाः खलु, यद् दृष्टपूर्वजन संगमविस्मृतानाम् (दरिद्राणाम्) परितोषकालाः एवम् विफली भवन्ति।।42।।
कठिन–शब्दार्थ – तोयरहितैः – जल रहित। शीर्णैः तरुभिः – सूखे वृक्षों। दृष्टपूर्वजनसंगमविस्मृतानाम् – पूर्व परिचित लोगों के मिलने पर अपनी वर्तमान दरिद्रता को भ्ल जाने वाले। परितोषकालाः – परितोष प्रदान के अवसर। विफलाः – फल शून्य।
प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है इसमें चारुदत्त निर्धनता सम्बन्धी अपनी मनोव्यथा व्यक्त कर रहा है–
व्याख्या – निर्धन लोग सूने घरों, पानी रहित कुओं तथा सूखे वृक्षों के समान हैं, क्योंकि पूर्व समय के परिचित लोगों के मिलने पर आतुरता के कारण अपनी वर्तमान दरिद्रता को भ्ल जाने वाले दरिद्र लोगों के परितोष काल (पुरस्कार आदि प्रदान करने के अवसर) इसी प्रकार व्यर्थ होते हैं। क्योंकि निर्धन होने के कारण वह पुरस्कार देने में समर्थ नहीं होता है।
विशेष –

(1) श्लोक का भाव यह है कि पहले धनी होकर बाद में जो निर्धन हो जाता है, उसे जब अपने पूर्व परिचित व्यक्ति मिलते हैं तो प्रसन्नता में अपनी वर्तमान गरीबी का ध्यान न रखकर पुरस्कार आदि देने की इच्छा करने लगता है, परन्तु धनाभाव के कारण दे नहीं पाता है। इस प्रकार उस समय की विफलता हो जाती है।
(2) प्रस्तुत श्लोक में मालोपमा एवं अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।
(3) इसमें वसन्ततिलका छन्द है।

56. **कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति।**
शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।।5/43।।

अन्वय – कः भ्तार्थम् श्रद्धास्यति, सर्वः माम् तुलयिष्यति, हि अस्मिन् लोके निष्प्रतापा दरिद्रता शंकनीया (भवति)।।43।।
कठिन–शब्दार्थ – भ्तार्थम् – सत्य घटना को। श्रद्धास्यति – मानेगा, विश्वास करेगा। तुलयिष्यति – तौलेंगे, मुझ पर सन्देह करेंगे। निष्प्रतापा – प्रताप शून्य। शंकनीया – सन्देह का विषय होती है।
प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है। इसमें चारुदत्त वसन्तसेना से कह रहा है–
व्याख्या – सत्य घटी हुई बात पर कौन विश्वास करेगा? सभो मुझे तौलेंगे अर्थात् मुझे बेईमान समझेंग क्योंकि इस संसार में निर्बल निर्धनता शंका का विषय बनती है। सभो लोग निर्धनता के कारण निर्धन व्यक्ति पर बेईमानी की आशंका करते हैं।

विशेष –

(1) इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

57. **तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं**
शिलासु रूक्षं सलिलेषु चण्डम्।
संगीतवीणा इव ताड्यमाना
स्तालानुसारेण पतन्ति धाराः।।5/52।।

अन्वय – तालानुसारेण ताड्यमानाः, संगीतवीणाः इव धराः तालीषु तारम्, विटपेषु मन्द्रम्, शिलासु रुक्षम्, सलिलेषु चण्डम् पतन्ति।।52।।

कठिन–शब्दार्थ – तालानुसारेण – लयताल के अनुसार। ताड्यमानाः – बजाई जाती हुई। धाराः – जल धरायें। तालीषु – ताड़ के पत्तों पर। तारम् – ऊंचे स्वर से। विटपेषु – वृक्षों पर। मन्द्रम – गंभोर ध्वनि से। शिलासु – पहाडों की चट्टानों पर। रुक्षम् – ककश। सलिलेषु – जल में। चण्डम् – प्रचण्ड ध्वनि के साथ।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक मृच्छकटिक के पंचम अंक से अवतरित है। इसमें नाटककार ने वर्षा के समय में बादलों से गिरने वाली जल–धाराओं की भिन्न–भिन्न पदार्थों पर अलग–अलग प्रकार की होने वाली आवाजों का वर्णन किया है :–

व्याख्या – लय व ताल के अनुसार बजायी जाती हुई संगीत की वीणाओं के समान ये पानी की धरायें ताड़ के पत्तों पर ऊंची ध्वनि से, वृक्षों पर गंभोर ध्वनि से, चट्टानों पर ककश ध्वनि से एवं पानी में प्रचण्ड ध्वनि से गिर रही हैं।

विशेष –

(1) जैसे वीणा के तार देखने में एक समान दिखाई देते हैं, परन्तु उनकी ध्वनियाँ अलग–अलग प्रतीत होती हैं, वैसे ही जल की धारायें सभो देखने में एक जैसी होती हैं, परन्तु विभिन्न पदार्थों से सम्पर्क होने पर उनकी ध्वनियां अलग–अलग होती हैं। यही समानता यहाँ व्यक्त की गई है।

(2) यहाँ उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

19.3 पारिभाषिक शब्दावली

द्विजसार्थवाहः – ब्राह्मण व्यापारी अथवा ब्राह्मण श्रेष्ठ। गुणानुरक्ताः – गुणों के कारण प्रेम करने वाली । वसन्तशोभेव – वसन्त ऋतु की सुन्दरता के समान।

सत्यम् – संसार में सामान्यतया लोग धन हानि के कारण चिन्तित एवं परेशान होने लगते हैं। चारुदत्त अपने विषय में उसका खण्डन करते हुये कहता है कि मुझे धन विनष्ट होने की चिन्ता नहीं है क्योंकि धनी होना या निर्धन हो जाना यह सब तो भाग्य का खेल है।

निर्बुद्धिः क्षयमेति – इसका आधर भगवद्गीता का यह वचन है ''बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'' किसी कवि ने भी कहा है– ''जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।''

विचक्षणः – अतिशय विद्वान

षष्ठं महापातकम् – मनु आदि महर्षियों ने पांच महापातक माने हैं (क) ब्रह्म हत्या (ख) सुरापान (ग) चोरी (घ) गुरुपत्नी–गमन (ड) इनमें से किसी भी पातकी के साथ वर्ष भर रहना। चारुदत्त की दृष्टि में 'निर्धनता' इन्हीं की कोटि में छठा महापातक है।

मालोपमा –प्रस्तुत श्लोक में दृष्टि, पुष्टि, बुद्धिः, सिद्धि, विद्या, रति इन अनेक उपमानों से उपमेयभूत वसन्तसेना का उल्लेख करने के कारण मालोपमा अलंकार है। मालोपमा का लक्षण हैः–

''मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।''

वसन्ततिलका – इसमें वसन्ततिलका छन्द है। जिसका लक्षण है

'' उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।''

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

1. सुखं हि .... स जीवति
2. एतत्तु मां .... कपोलाम्

3. सत्यं नं .... भवन्ति
4. दारिद्र्याद .... सर्वापदामास्पदम्
5. यः स्तब्धं .... प्रसंगेन किम्
6. कामं नीचमिदंः .... द्रौणिनः
7. मार्जारः क्रमण .... नौर्जल
8. एता हसन्ति .... वर्जनोयाः
9. न खलु मम .... न कुर्याद्
10. एतत्तद्धृतराष्ट्र .... चर्या गतः

बोध प्रश्नोत्तर

1. प्रश्न एक से चार तक के उत्तर के लिए 19.2 के अंक एक में संबद्ध श्लोक संख्या 10, 12, 13, 14 देखें।
2. प्रश्न पांच के उत्तर के लिए 19.2 के अंक दो में श्लोक 12 देखें।
3. प्रश्न छह व सात के उत्तर के लिए 19.2 के अंक तीन में संबद्ध श्लोक संख्या 11 तथा 20 देखें।
4. प्रश्न आठ तथा नौ के उत्तर के लिए 19.2 के अंक चार में संबद्ध श्लोक 11 व 20 देखें।
5. प्रश्न दस के उत्तर के लिए 19.2 के अंक पांच में संबद्ध श्लोक 6 देखें।

19.5 सारांश

इस इकाई में आपने महाकवि शूद्रक रचित प्रसिद्ध प्रकरण के प्रमुख श्लोकों/अंशों की व्याख्या का अध्ययन किया है। यह श्लोक नाटक की मूल भावना से परिचित कराने के साथ–साथ विभिन्न परिस्थितियों में मानवीय विचार व व्यवहार की सूचना भी देते है । इन श्लोकों को पढ़कर आप शुद्रक की काव्यकला और उनके नाटककार/कवि के रूप में महत्त्व से परिचित हुए होंगे।

19.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई 20

मृच्छकटिकम् के प्रमुख अंशों की सप्रसंग व्याख्या (5 से 10 अंक तक)

इकाई रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

संस्कृत विषय के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय से सम्बन्धित इस इकाई में 'मृच्छकटिकम्' नाटक के पंचम अंक से दशम अंक तक के प्रमुख अंशो की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की गयी है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रसंग सहित कर सकेंगे ।
- मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक की संक्षिप्त कथावस्तु से भो परिचित हो सकेंगे ।

20.1 प्रस्तावना

संस्कृत के स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध प्रश्नपत्र द्वितीय के अन्तर्गत महाकवि शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् नाटक का अध्ययन निर्धारित है । इस इकाई से पूर्व आप नाटक के प्रथम अंक से लेकर

चतुर्थ अंक तक का ज्ञान प्राप्त कर चुके होगें । इस इकाई में मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक के प्रमुख–प्रमुख अंशों की व्याख्या प्रस्तुत की है । व्याख्या के साथ में प्रस्तुत श्लोक का प्रसंग भो लिखा गया है । विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यकतानुसार व्याख्या को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया है । प्रत्येक श्लोक में टिप्पणी भो दी गई है । टिप्पणी के अन्तर्गत छन्द, अलंकार तथा प्रकृति–प्रत्यय आदि बतलाये गए है ।

पंचक अंक से लेकर दशम अंक तक के प्रत्येक अंक की कथावस्तु संक्षिप्त रूप में अंक के प्रारम्भ में प्रस्तुत कर दी गई है ताकि श्लोकों को पढते समय कथावस्तु के बारे में भो विद्यार्थी को ज्ञान रहे ।

20.2 पात्र परिचय

चारुदत्त	–	नायक उज्जयिनी का प्रमुख नायक
वसन्तसेना	–	नायिका, गणिका
मैत्रेय	–	विदूषक, चारुदत्त का मित्र
शकार	–	प्रतिनायक, राजा पालक का श्यालक
विट	–	शकार का सहचर
चेट	–	शकार का सेवक
संवाहक	–	चारुदत्त का भ्तपूर्व सेवक, द्यूतकर होने के पश्चात् बौद्ध भिक्षु
वर्द्धमानक	–	चारुदत्त का यानवाहक
शर्विलक	–	ब्राह्मण, मदनिका का प्रेमी
चेट	–	वसन्तसेना का सहचर
विट	–	वसन्तसेना का सहचर
रोहसेन	–	चारुदत्त का पुत्र
आर्यक	–	गोपालक, राजा पालक का बन्दी, पश्चात् राजा
वीरक	–	नगर रक्षक
शोधनक	–	न्यायालय का सेवक
अधिकरणिक	–	न्यायाधीश
कायस्थ	–	न्यायालय का सेवक
चाण्डाल	–	शूली पर चढ़ाने वाले
पालक	–	अवन्ती का राजा
चेटी	–	वसन्तसेना की दासी
मदनिका	–	वसन्तसेना की प्रियदासी, शर्विलक की प्रियसी
धूता	–	चारुदत्त की पत्नी
रदनिका	–	चारुदत्त की परिचारिका

20.3 पंचम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'दुर्दिन' नामक इस अंक में वसन्तसेना के अभिसरण का वर्णन है । उत्कंठित चारुदत्त के पास आकर विदूषक उससे कहता है कि वसन्तसेना ने रत्नावली स्वीकार कर ली है और

सायंकाल उससे मिलने के लिये आने वाली है । घोर वर्षा हो रही है, बिजली चमक रही है, मेघ गरज रहे है, ऐसे समय में चेट आकर सूचना देता है कि वसन्तसेना आ रही है विट, चेटी तथा वसन्तसेना चारुदत्त के घर की ओर आ रहे हैं तथा वर्षा ऋतु का सुन्दर वर्णन कर रहे हैं । विदूषक के साथ वसन्तसेना चारुदत्त की गृहवाटिका में प्रवेश करती है । चारुदत्त प्रसन्न होकर उसका स्वागत करता है तथा आगमन का कारण पूछे जाने पर वसन्तसेना की चेटी कहती है कि स्वामिनी उस रत्नावली का मूल्य पूछने आयी है तथा उसके बदले में स्वर्ण–भाण्ड देने आयी हैं । चारुदत्त और विदूषक उस स्वर्णभाण्ड को देखकर आश्यर्च में पड़ जाते है । स्वर्ण–भाण्ड प्राप्ति की कथा को सुनकर विदूषक, चारुदत्त तथा अन्य सभो हर्षित होते है । उसी समय वर्षा होने लगती है । वर्षा के अधिक तेज होने के कारण चारुदत्त तथा वसन्तसेना घर के अन्दर चले जाते है तथा वसन्तसेना रात्रि में वहीं विश्राम करती है । यहां पंचम अंक समाप्त हो जाता है ।

पंचम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो ।
विद्युत्प्रभारचित पीत पटोत्तरीयः ।
आभाति संहतबलाकगृहीतशङ्.खः
खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः ।।

अन्वय : जलार्द्र महिषेदरभङ्गनीलः, विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः, सहत बलाकगृहीतशङ्.खः अपरः केशवः इव, खम् आक्रमितुम् प्रवृत्तः मेघः आभाति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में कवि ने मेघ के सौन्दर्य का वर्णन किया है । चारुदत्त इस समय उत्कण्ठित अवस्था में बैठा हुआ तथा बादलों को देखकर कहता है ।

व्याख्या : जल से गीले किये गये भसें के उदर और भोरे के समान नीला, बिजली की प्रभा से निर्मित पीताम्बर के समान उत्तरीय को धारण करने वाला, (विष्णु पक्ष में – बिजली की प्रभा के समान निर्मित उत्तरीय को धारण करने वाले) एकत्रित बगुलों की पंक्तिरूपी शंखवाला (विष्णु पक्ष में – एकत्रित बगुलों की पंक्ति के समान पाञ्चजन्य नामक शंख को धारण करने वाले) दूसरे विष्णु के समान आकाश को व्याप्त करने को उद्यत मेघ शोभित हो रहा है।

इस श्लोक में समान विशेषणों के द्वारा विष्णु के श्याम शरीर से मेघ की समता दिखलाई है । भसे के उदर तथा भमर के समान नीले मेघ जिसने बिजली की कांति से बने पीताम्बर के समान वस्त्र को धारण कर रखा है तथ इकट्ठे हुए बगुलों रूपी शंखवाला मेघ ऐसा शोभित हो रहा है मानो आकाश को लांघने के लिए तैयार है । विष्णु पक्ष में श्याम वर्ण विष्णु बिजली की कांति के समान उत्तरीय को धारण करने वाले इकट्ठे हुए बंगुलों की पंक्ति के समान शंख को धारण करने वाले (वामन रूपधारी विष्णु) मानों आकाश को व्याप्त करने के लिए तैयार शोभायमान हो रहे है ।

टिप्पणी : इसमें रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है । पौराणिक कथानुसार वामनरूप में विष्णु ने आकाशपर्यन्त पैर से नाप लिया था । वसन्ततिलका छन्द है ।

एतत्तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशं मेघान्धकारं नभो,
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखो ।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः ।।

अन्वय : मेघान्धकारम् एतत् नभः तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृशम् अतिदर्पितबलः, शिखी दुर्योधनः वा हृष्टः गर्जति, कोकिलः, अक्षद्यूतजितः, युधिष्ठिरः, इव अध्वानम् गतः सम्प्रति हंसाः पाण्डवाः इव वनात् अज्ञातचर्याम् गताः।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम् अंक से उद्घृत है । इस श्लोक में चारुदत्त ने दुर्योधन के कुशासन की तुलना वर्षा के साथ की गयी है –

व्याख्या : बादलों के कारण अन्धकारयुक्त यह आकाश (धृतराष्ट्र के मुख भो के समान है आंखे न होने से अन्धकारपूर्ण था तथा आकाश की भो सूर्य चन्द्रमा रूपी दो आंखे बादलों से नष्ट हो गई थी।) अपने रूप के घमण्ड वाला मोर (दुर्योधन पक्ष में अतिघमण्डी सेना वाला) दुर्योधन के समान प्रसन्न होता हुआ शब्द कर रहा है । पांसे के द्वारा जुए में हारे हुए युधिष्ठिर के समान कोयल मौन (युधिष्ठिर पक्ष में – वनमार्ग) को प्राप्त हो गई है । इस वर्षा ऋतु में हंस पाण्डवों के समान वन (हंस पक्ष में–पानी) से अज्ञातवास को (मानसरोवर) चले गये है ।

यहाँ जन्माध घृतराष्ट्र को तुलना सूर्यचन्द्र रहित आकाश से करते हुए कहा है कि जैसे पाण्डव जुए में हारकर अज्ञातवास को चल गये थे उसी प्रकार वर्षा ऋतु में हंस वन जल को छोड़कर मानसरोवर चले गये ।

टिप्पणी : उपमा अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है । घ्वान – शब्द, न घ्वानम् अघ्वानम् मौन

वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं,
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति ।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ।।

अन्वय : तुरगः त्वरितं प्रयातुं वेगं करोति, तु प्राणव्ययात् तस्य चरणाः तथा न वहन्ति, पुरुषस्य चलाः स्वभावाः सर्वत्र यान्ति, ततः खिन्नाः पुनः हृदयं एव विशन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक श्रेष्ठ कवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के पंचम अंक से लिया गया है। इस श्लोक में चारुदत्त सामर्थ्याभाव के कारण वसन्तसेना को प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ भो प्राप्त नहीं करने के कारण कहता है –

व्याख्या : घोड़ा शीघ्र भागने के लिए ताकत (वेग) लगाता है । किन्तु शक्ति का क्षय होने के कारण पैर उस प्रकार वेग से नहीं चलते है । उसी प्रकार पुरूष की चचल मनोवृत्तियाँ (स्वभाव)सब स्थानों पर जाती है किन्तु (विफलता के कारण) वहाँ से खिन्न होकर पुनः हृदय में प्रविष्ट हो जाती है।

जिस तरह तेज दौड़ने वाला घोड़ा शक्ति क्षीण होने पर चाह कर भो नहीं दौड़ पाता है। उसी तरह असमर्थ मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ भो दौड़कर मन में रह जाती है। चारुदत्त की सामर्थ्याभाव के कारण वसन्तसेना को प्राप्त करने की इच्छा मन में रह जाती है ।

टिप्पणी : दृष्टान्त अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है । प्राण–शक्ति, शक्तिः पराक्रमः प्राणः–अमरकोश

पवन–चपल वेग स्थूलधारा शरौघः
स्तनित–पटह–नादः स्पष्टविद्युत्पताकः ।
हरति करसमूहं खे शशाङ्कस्य मेघो
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः ।।

अन्वय : पवन चपलवेगः स्थूलधाराशरौधः स्तनितपटहनादः स्पष्टविद्युत्पताकः, मेघः मन्दवीर्यस्य शत्रोः पुरमध्ये नृपः इव रवे शशाङ्कस्य करसमूहं हरति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उदधृत है । इस श्लोक में कवि ने मेघ तथा विजयी राजा का श्लेषात्मक वर्णन किया है । जब विट तथा वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाते है उसी समय विट वसन्तसेना के स्त्री स्वभाव से हठी मेघ का समर्थन करते हुए विट कहता है –

व्याख्या : वायु के कारण चञ्चल वेगवाला, पानी की मोटी धारा रूपी बाणों वाला, गर्जना रूपी नगाड़े की आवाज वाला, स्पष्ट बिजली रूपी पताका वाला मेघ आकाश में चन्द्रमा के किरण समुदाय को उसी प्रकार हरण (आच्छादित) कर रहा है जिस प्रकार मन्द पराक्रम शत्रु के कर (टैक्स) को राजा नगर के बीच में ही हर लेता है । (राजा के पक्ष में) वायु के समान वेग वाला (जल की) मोटी धाराओं के समान बाण समूह वाला, मेघ के गर्जन के सदृश नगाड़ो की आवाजा वाला, चमकती हुई बिजली के समान पताका वाला विजयी राजा कमजोर शत्रु के नगर में उससे कर (टैक्स) लेने लग जाता है । यहाँ मेघ की प्रबलता का कथन विजयी राजा के समान किया गया है ।

टिप्पणी : श्लेष तथा रूपक से पुष्ट उपमा अलंकार है । मालिनी छन्द है ।

गता नाशं तारा उपकृतमसाधाविव जने,
वियुक्ताः कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः।
प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना,
द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम् ।।

अन्वय : असाधौ जने उपकृतम्, इव ताराः नाशं गता कान्तेन वियुक्ताः स्त्रियः इव ककुभः न राजन्ति त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना प्रकामान्तस्तप्तं गगनं द्रवीभ्तं जलरूपेण पतति मन्ये ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के पंचम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में वसन्तसेना वर्षा के कारण अन्धकार होने से संसार में व्याप्त निष्क्रियता का वर्णन किया है –

व्याख्या : दुष्ट व्यक्ति पर किये गये उपकार की भांति तारे नाश को प्राप्त हो गये हैं । (आकाश से विलीन हो गये है) पतियों से रहित स्त्रियों के समान दिशायें (सूर्य अथवा चन्द्रमा से वियुक्त होने के कारण) शोभित नहीं हो रहीं है । देवताओं के स्वामी इन्द्र के शस्त्र (वज्र) की अग्नि से अत्यन्त तप्त हुआ आकाश पिघला हुआ होकर जल रूप में गिर रहा है ।

जिस तरह दुर्जन व्यक्ति पर किया गया उपकार जैसे व्यर्थ चला जाता है उसी प्रकार आकाश मे स्थित तारे भो व्यर्थ हो गये हैं । अन्धकारातिशय के कारण उनका अस्तित्व समाप्त सा प्रतीत होने लगता है।

टिप्पणी : उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है । शिखरिणी छन्द है ।

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एवं तावत् ।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ।।

अन्वय : लोके घनैः वियुक्तस्य नरस्य आदितः एव जीवितेन किं तावत् यस्य कोपप्रसादाः प्रतीकारनिरर्थकत्वात् विफलीभवन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् से उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त चेटी के मुख से स्वर्णभाण्ड का सुखद, समाधार सुनकर उसे पुरस्कार देना चाहता है किन्तु अपनी अंगुली अंगूठी हीन देखकर पुरस्कार प्रदान करने में स्वयं को असमर्थ पाकर स्वयं की अवस्था का वर्णन करता है –

व्याख्या : संसार में धनहीन व्यक्ति के जन्म से ही लेकर जीवित रहने से क्या लाभ ? जिसके प्रतिक्रिया करने में असमर्थ होने स क्रोध एवं प्रसन्नता दोनों पहले से ही निष्फल हो जाती है ।

धनहीन व्यक्ति की प्रसन्नता और अप्रसन्नता असमर्थ होने के कारण व्यर्थ हो जाती है क्येंकि वह व्यक्ति खुश होकर भो कुछ नहीं कर सकता और नाराज होकर भो कुछ नहीं बिगाड़ सकता । चारुदत्त चेटी के मुख से स्वर्णभाण्ड का अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर अपने

स्वभाव के अनुसार तत्काल पुरस्कृत करना चाहता हुआ भो जब अपनी निर्धनता को देखता है तो उसे लगता है कि ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है ।

टिप्पणी : अप्रस्तुत प्रशंसा तथा काव्यलिङ्ग अलंकार है । उपजाति छन्द है ।

शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषा दरिद्राः
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः ।
यददृष्टपूर्वजनसंगमविस्मृताना –
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः ।।

अन्वय : दरिद्राः पुरूषाः शून्यैः गृहैः तोयरहितैः कूपैः च शीर्णैः तरूभिः च समाः खलु यद् दृष्टपूर्वजनसंगमविस्मृतानाम् परितोषकालाः एवम् विफलीभवन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के पंचम अंक से उदधृत है । इस श्लोक में चारुदत्त पुरस्कार प्रदान करने की इच्छा करता हुआ भो न दें पाकर पीड़ित होता हुआ कहता है –

व्याख्या : दरिद्र मनुष्य सूने घरों, जलरहित कूपों तथा शुष्क वृक्षों के समान है क्योंकि पूर्वकाल में परिचित लोगों के मिलने पर (आतुरता के कारण) अपनी वर्तमान दरिद्रता को भ्ल जाने वाले निर्धन लोगों के परितोष काल (पुरस्कार प्रदान करने के अवसर) इसी प्रकार व्यर्थ होते है ।

पहले धनी होकर बाद में जो निर्धन हो जाता है उसे जब अपने पुराने परिचित व्यक्ति मिलते हैं तो हर्षातिरेक के कारण अपनी वर्तमान अवस्था का ध्यान नहीं रहता है और वह पुरस्कार आदि देने की इच्छा करने लगता है किन्तु धनाभाव के कारण दे नहीं पाता है ।

टिप्पणी : उपमा तथा अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है वसन्ततिलका छन्द है ।

20.4 षष्ठ अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

प्रवहण विपर्यय' नामक षष्ट अंक कथा के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में वसन्तसेना के शकार की गाड़ी में चढ़ जाने का तथा आर्यक के चारुदत्त की गाड़ी में चढ़ जाने का वर्णन है । कई दृश्यों में समाप्त होने वाले इस अंक के प्रथम दृश्य में चेटी वसन्तसेना को सूचना देती है कि आर्य चारुदत्त जीर्णोधान गये हैं तथा आपको भो गाड़ी द्वारा वहीं आने की कह गये हैं, यह सुनकर वसन्तसेना अत्यन्त प्रसन्न होती है । तत्पश्चात् वसन्तसेना रत्नावली को धूता के पास भजती है किन्तु वह उसे लेने से इन्कार कर देती है । द्वितीय दृश्य में रदनिका रोहसेन को गोद में लेकर प्रवेश करती है और उसे खेलने के लिए मिट्टी की गाड़ी देती है किन्तु वह सोने की गाड़ी की जिद करता है । (इसी मृत् शकटिका (मिट्टी की गाड़ी) के नाम पर इस नाटक का नाम 'मृच्छकटिकम्' रखा गया है।) इस पर वसन्तसेना द्रवित होकर अपने आभ्षण सोने की गाड़ी बनवाने के लिए रोहसेन की गाड़ी में रख देती है । तृतीय दृश्य में चारुदत्त का सेवक वर्धमानक वसन्तसेना को लेने के लिए गाड़ी लेकर आता है । किन्तु बिछावन भ्ल जाने से गाड़ी सहित लौट जाता है । इसी बीच शकार का सेवक स्थावरक चेट शकार की गाड़ी चारुदत्त के दरवाजे के पास खडो कर देता है तथा स्वयं एक गाड़ीवान की सहायता करने अन्यत्र चला जाता है । इसी समय वसन्तसेना शकार की गाड़ी को चारुदत्त की गाड़ी समझकर बैठ जाती है । इतने में स्थावरक वापस आकर गाड़ी लेकर पुष्पकरण्डक उद्यान की ओर चल देता है । इधर वर्धमानक भो लौटकर चारुदत्त की वाटिका के द्वार पर गाड़ी रोक देता है । बन्धन तोड़कर भागा हुआ आर्यक छिपकर अपनी रक्षा के लिए उस गाड़ी में चढ़ जाता है । आर्यक को वसन्तसेना समझ वर्धमानक गाडी को जीर्णोद्यान की ओर ले जाता है । चतुर्थ दृश्य में – राजा के सेनाधिकारी वीरक तथा चन्दनक वर्धमानक से गाड़ी रोकत है । चन्दनक उसमें आर्यक को देखता है किन्तु आर्यक को अभयदान देने के कारण वीरक को वसन्तसेना बैठी है ऐसा कहता है । वीरक को सन्देह होने पर दोनों लड़ाई करते हैं किन्तु चन्दनक के

संकेत पर वर्धमानक गाड़ी ले जाता है । यहाँ षष्ठ अंक समाप्त हो जाता है । इस अंक की विभिन्न घटनाऐं पाठक के मन कौतूहल पैदा करती है तथा कथा के विकसित में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है ।

20.5 षष्ठ अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

भाग्यानि मे यदि तदा मम कोऽपराधो,
यद्वन्यनाग इव संयमितोऽस्मि तेन ।
दैवी च सिद्धिरपि लङ्घधयितुं न शक्या,
गम्यो नृपो बलवता सह को विरोधः ।।

अन्वय : यदि मे भाग्यानि तदा मम कः अपराधः यत् तेन वन्यनागः इव संयमितः अस्मि । दैवी च सिद्धिः अपि लड्.घयितु न शक्या नृपः गम्यः बलवता सह कः विरोधः ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के षष्ठ अंक से लिया गया है । प्रस्तुत श्लोक म आर्यक शर्विलिक की सहायता से जेल से बाहर निकलने पर भाग्य की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है –

व्याख्या : यदि (राज्यप्राप्ति) मेरे भाग्य ही है तब मेरा क्या अपराध जिसके कारण उस राजा पालक ने मुझ जंगली हाथी के समान बन्धन में डलवा दिया था । विधि की शक्ति का उल्लंघन नहीं किया जा सकता । (फिर भो) राजा सेवा करने योग्य है क्योंकि बलवान् के साथ क्या विरोध ।

आर्यक भाग्य के महत्त्व को बतलाते हुए कहता है कि भाग्य में यदि राज्य प्राप्ति है तो वह अवश्य होगी। राजा पालक की आलोचना करता हुआ भो उससे शत्रुता रखने के पक्ष में नहीं है ।

टिप्पणी :– उपमा तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है वसन्ततिलका छन्द है ।

त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति ।।

अन्वय : यः शरणागतं त्यजति तं जयश्रीः खलु त्यजति मित्राणि वन्धुवर्गः च किल जहति सदा च उपहास्यः भवति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक कवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम नाटक के षष्ठ अंक से उदधृत है। इस श्लोक में चन्दनक शरणागत की रक्षा करना सर्वोपरि मानता हुआ कहता है ।

व्याख्या : जो शरणागत का त्याग कर देता है उस व्यक्ति को विजयलक्ष्मी छोड़ देती है । मित्र एवं बन्धुगण भो छोड़ देते हैं तथा वह सदा उपहास का पात्र होता है ।शरणागत की रक्षा करना सर्वश्रेष्ठ है इस कारण चन्दनक समाज में निन्दा के भय से शरणागत आर्यक की रक्षा करना ही उचित मानता है।

टिप्पणी : समुच्चय अलंकार तथा आर्या छन्द है ।

20.6 सप्तम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'आर्यकापहरण' नामक सप्तम अंक में आर्यक के अपहरण की घटना का वर्णन किया गया है । चारुदत्त तथा विदूषक वसन्तसेना के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं । उसी समय गाड़ी आती है विदूषक वसन्तसेना को उतारने के लिए पर्दा हटाता है किन्तु वहाँ उसे आर्यक दिखाई देता है वह डर जाता है तब स्वयं चारुदत्त देखता है तत्पश्चात उसे आर्यक जानकर उसको अभयदान देता है । चारुदत्त उसकी बेडियाँ कटवाकर कुएँ में डलवा देता है तथा आर्यक को शीघ्र ही अपनी गाड़ी से घर जाने को कहता है तथा वे दोनों भो घर की ओर चले जाते हैं । इस तरह सप्तम अंक की समाप्ति हो जाती है ।

20.7 सप्तम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रंसंग व्याख्या

किं यात्यस्य पुरः शनैः प्रवहणं तस्यान्तरं भार्गते ।
भग्नेऽक्षे परिवर्तनं प्रकुरुते ? छिन्नोऽथवा प्रग्रहः ?
वर्त्मान्तोज्झित–दारु–वारित–गतिर्मार्गान्तरं याचते ?
स्वैरं प्रेरितगोयुगः किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति ?

अन्वय : किम् अस्य पुरः प्रवहणं शनैः याति तस्य अन्तरं मार्गते ? अथवा अक्षे भग्ने परिवर्तनं कुरुते, अथवा प्रग्रहः छिन्नः अथवा वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिः मार्गान्तरं याचते अथवा स्वैरं प्रेरितगोयुगः स्वच्छन्दं आगच्छति किम्?

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के सप्तम अंक से उदघृत है । इस श्लोक में चारुदत्त वसन्तसेना के विलम्ब के कारण अनेक शंकायें करता हुआ कहता है –

व्याख्या : क्या उसके (वर्धमानक) आगे धीरे–धीरे कोई दूसरी गाड़ी जा रही है और उससे निकालने का खाली रास्ता ढूँढ रहा है ? अथवा चक्र के टूट जाने से उसे बदल रहा है ? अथवा लगाम की रस्सी टूट गई है अथवा रास्ते के मध्य लकड़ियों के रखने से अवरूद्ध गति वाला अन्य मार्ग ढूँढ रहा है अथवा दोनों बैलों को धीरे–धीरे हांकता हुआ स्वन्छन्दतापूर्वक आ रहा है ।

वसन्तसेना को लेकर वर्धमानक नहीं आ सका इस विषय में चारुदत्त अनेक प्रकार की शंकायें कर रहा है । उसके मन में सन्देह हो रहा है कि कहीं सभो रास्ते बंद न कर दिये गये हो इस कारण वर्धमानक किसी अन्य सुरक्षित रास्ते से जाने की प्रार्थना कर रहा होगा ।

टिप्पणी : सन्देह अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

नरपतिपुरुषाणां दर्शनाद्भीतभीतः,
सनिगडचरणत्वात् सावशेषापसारः ।
अविदितमधिरूढ़ो यामि साधोस्तु याने
परभृत इव नीडे रक्षितो वायसीभिः ।।

अन्वय : नरपतिपुरुषाणां दर्शनाद् भोतभोतः सनिगडचरणत्वात् सावशेषापसारः तु नीडे वायसीभिः रक्षितः परभतः इव साधोः याने अविदितम् अधिरूढ़ः यामि ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के सप्तम अंक से उद्धृत है इस श्लोक में गाड़ी में छिपकर बैठा हुआ आर्यक सोचता है –

व्याख्या : राजपुरूषों को देखने से अत्यन्त भयभोत, पैरों में बेडियाँ होने से भागने में पूर्णतया असमर्थ घोसलें में काक मादाओं द्वारा रक्षित कोयल के समान मैं सत्पुरूष (चारुदत्त) की गाड़ी में अनजाना ही आरूढ़ होकर जा रहा हूँ।

टिप्पणी : उपमा अलंकार तथा मालिनी छन्द है ।

परभतः कोकिल परैः भतः पुष्टः इति । यह प्रसिद्ध है कि कोयल अपना अण्डा कौवा के घोसलें में रख देती है और कौवी भमवश अपना अण्डा समझकर उसकी रक्षा करती हुई पालन–पोषण करती रहती है। आर्यक स्वयं को भो उसी तरह समझ रहा है । क्योंकि वह गाड़ी चारुदत्त की है और स्वतः ही आर्यक की रक्षा होती जा रही है ।

20.8 अष्टम अंक की संक्षिप्त व्याख्या

'वसन्तसेनामोटन' नामक यह अष्टम अंक है । इसमें शकार की वसन्तसेना को मारने का प्रयत्न वर्णित है । प्रथम दृश्य में गीले चीवर के साथ बौद्ध भिक्षुक पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में प्रवेश होता है । शकार उसे पीटने का प्रयत्न करता है किन्तु विट उसे बचा लेता है । द्वितीय दृश्य में स्थावरक चेट गाड़ी लेकर आता है । शकार गाड़ी में वसन्तसेना को देखकर घबड़ा जाता है वह बिट से कहता है कि गाड़ी में राक्षसी बैठी है । तब विट गाड़ी में वसन्तसेना को देखता है । तथा वसन्तसेना विट से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है । अतः विट शकार को पैदल ही चलने को कहता है किन्तु शकार नहीं मानता है । वह वसन्तसेना को फसलाने का प्रयास करता है, उसके पैरों में गिरता है किन्तु वसन्तसेना स्वीकार करने के स्थान पर पैर मार देती है । शकार क्रुद्ध होकर विट तथा चेट से वसन्तसेना को मारने को कहता है किन्तु वे दोनों ऐसा करने से इन्कार कर देते है । शकार उन दोनों को अलग कर स्वयं वसन्तसेना का गला दबा देता है । वह मूर्च्छित हो जाती है । तृतीय दृश्य में चेट के साथ विट पुनः प्रवेश करता है । विट के वसन्तसेना के बारे में पूछने पर शकार उसका मूर्च्छित शरीर दिखाता है । विट दुःखी होकर विलाप करता है । शकार चेट को पकड़कर अपने घर में बन्दी बना लेता है । वसन्तसेना के शरीर को सूखे पत्तों से ढककर स्वयं चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगाने न्यायालय की ओर जाता है । चतुर्थ दृश्य में शकार के जाते ही बौद्ध भिक्षु का प्रवेश होता है । वह अपने गीले वस्त्र सुखाने के लिए स्थान खोजता है । इसी बीच उसे पत्तों में से किसी के सास लेने की आवाज आती है । वसन्तसेना कुछ होश में आने पर अपना हाथ दिखाती है भिक्षु पत्ते हटाकर देखता है, उसे पहचान लेता है । वसन्तसेना के पानी मांगने पर अपना चीवर निचोड़कर पानी दे देता है तथा सहारा देकर वसन्तसेना को बौद्ध विहार की ओर ले जाता है । अष्टम अंक पूर्ण हो जाता है ।

20.9 अष्टम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

अमी हि वृक्षाः फलपुष्पशोभिताः
कठोर निष्पन्दलतोपवेष्टिताः ।
नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिता,
नराः सदारा इव यान्ति निर्वृतिम् ।।

अन्वय :– फलपुष्पशोभिताः कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः अमी वृक्षाः नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिताः सदाराः नराः इव निर्वृतिम् यान्ति ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के अष्टम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में प्रकृति का मानवीकरण करते हुए विट के द्वारा उद्यान की शोभा का वर्णन किया गया है –

व्याख्या :– फल एवं पुष्पों से शोभायमान निश्चल लताओं से भली भांति आलिङ्गित, ये वृक्ष राजा की आज्ञा से रक्षकों द्वारा संरक्षित सपत्नीक पुरूषों के समान सुख प्राप्त कर रहे है ।

जिस तरह सपत्नीक पुरूष आनन्दित होते हैं उसी तरह लताओं से युक्त वृक्ष भो शोभायमान हो रहे हैं।

टिप्पणी :– उपमा अलंकार तथा वंशस्थ छन्द है ।

छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते गोकुलं,
तृष्णार्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्णं पयः सारसम् ।
संतापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरैः सेव्यते,
तप्तां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित्संस्थितम् ।।

अन्वय : गोकुल छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते तृष्णार्तैः वनमृगैः च उष्णं सारसं पयः निपीयते । सन्तापात् अतिशङ्कितैः नरैः नगरी मार्गः न सेव्यते मन्ये तप्तां भूमिं अपास्य प्रवहणं क्वचित् संस्थितम् ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के अष्टम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में विट ग्रीष्मसन्ताप का वर्णन कर रहा है तथा सोच रहा है कि गर्मी के कारण ही बैलगाड़ी आने से विलम्ब हो रहा है –

व्याख्या : गायों का झुण्ड कोमल घास के ग्रास को छोड़कर छाया में नींद ले रहा है । प्यास से व्याकुल जंगली जानवरों द्वारा सरोवर का गर्म जल पिया जा रहा है । गर्मी के कारण अत्यन्त भयभोत होकर मनुष्य नगर की सडक पर नहीं चल रहे हैं । अतः मैं समझता हूँ कि सन्तप्त भूमि को छोड़कर वह बैलगाड़ी कहीं (शीतल प्रदेश) ठहर गयी है ।

शकार के द्वारा गर्मी के ताप का वर्णन किए जाने पर विट उसका समर्थन करते हुए स्वयं भो ग्रीष्म ऋतु के सन्ताप को वर्णित कर रहा है तथा समझ रहा है कि गर्मी के कारण ही बैलगाड़ी किसी शीतल स्थान पर रूक गयी है ।

टिप्पणी : स्वभावोक्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

पश्यन्ति मां दश दिशो वनदेवताश्च,
चन्द्रश्च दीप्तिकिरणश्च दिवाकरोऽयम् ।
धर्मानिलौ च गगनश्च तथान्तरात्मा,
भूमिस्तथा सुकृति–दुष्कृति–साक्षिभूताः ।।

अन्वय : सुकृतिदुष्कृतसाक्षिभूताः दश दिशः वनदेवताः च चन्द्र च दीप्तकिरणः अयं दिवाकरः च धर्मानिलौ च गगनं च तथा अन्तरात्मा च तथा भूमिः मां पश्यन्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के अष्टम अंक से लिया गया है । इस श्लोक में शकार विट से वसन्तसेना को मारने के लिए कहता है किन्तु शकार कहता है कि तुम्हें पाप करते हुए कोई नहीं देखेगा इसके प्रत्युतर में विट का कथन है –

व्याख्या : पुण्य और पाप की साक्षी दश दिशायें, वन के देवता, चन्द्रमा और दीप्त किरणों वाला यह सूर्य, धर्म तथा वायु, आकाश व अन्तरात्मा तथा पथ्वी वे सब मुझे देखती है ।

शकार विट को वसन्तसेना को मारने के लिए कहता है किन्तु विट इस पाप को करने से इन्कार करते हुए तर्क देता है कि उपर्युक्त विद्यमान सभो तत्त्व मेरे पाप के साक्षी होगें । इस कारण वह वसन्तसेना की हत्या करने से मना कर देता है ।

टिप्पणी : तुल्ययोगिता अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है । साक्षिभूता साक्षिणीभूता, साक्षात् + इन्

अप्येष नाम परिभूतदशो दरिद्रः,
प्रेष्यः परत्र फलमिच्छति नास्य भर्ता ।
तस्मादमी कथमिवाद्य न यान्ति नाशं
ये वर्द्धयन्त्यसदृशं सदृशं त्यजन्ति ।।

अन्वय : परिभूतदशः दरिद्रः प्रेष्यः अपि एषः परत्र फलं इच्छति नाम अस्य भर्ता न, तस्मात् ये असदृशम् वर्धयन्ति सदृशं त्यजन्ति ते अद्य कथमिव नाशं न यान्ति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक रचित मृच्छकटिकम् के अष्टम अंक से उद्धृत है इस श्लोक मे विट का कथन है कि निर्धन व्यक्ति भो परलोक मे फल की आसक्ति रखता हुआ निकृष्ट कार्य नहीं करता है किन्तु यह शकार अनुचित कार्य करते हुए नष्ट क्यों नहीं होता है ।

व्याख्या : तिरस्कृत अवस्था में विद्यमान निर्धन सेवक भो यह परलोक में फल की इच्छा करता है, किन्तु इसका स्वामी शकार नहीं करता है । अतः जो अनुचित कम की वृद्धि करते हैं तथा उचित कम को छोड़ देते है व आज ही विनाश को प्राप्त क्यों नहीं होते ?

शकार के कार्यों से दुःखी होकर विट कहता है कि अनुचित कार्य करने वाला शकार सुखी तथा सम्पन्न है तथा धर्म का आचरण करने वाला चेट दयनीय अवस्था को प्राप्त है यह महान् आश्चर्य कला कार्य विधि का विधान है । अनुचित कार्य वाले जन इस संसार का विनाश करने के लिए क्यों बने रहते है उनका नाश क्यों नहीं हो जाता ।

टिप्पणी : अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।

दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता, याता स्वदेशं रतिः,
हा हा अलङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा ! मादृशां आश्रये
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः ।

अन्वय : दक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता रतिः स्वदेशं याता, हा, हा, अलङ्कृतभ्षणे ! सुवदने ! कीडारसोद्भासिनी । हा प्रहासपुलिने ! सौजन्यनदि । हा ! मादृशां आश्रये हा, हा मन्मथस्य विपणिः, सौभाग्यपण्याकरः नश्यति ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' के अष्टम अंक से उदधृत है । शकार के मुख से वसन्तसेना के वध को सुनकर आहत हुआ विट उसके गुणों का वर्णन करता हुआ विलाप करता है –

व्याख्या : उदारता रूपी जल की नदी नष्ट हो गयी, कामदेव की पत्नी रति अपने देश (स्वर्ग) चली गयी, हा ! आभ्षणों को अलंकृत करने वाली ! सुन्दर मुख वाली ! (काम) क्रीड़ा के आनन्द को उदभासित करने वाला हा ! हास रूपी बालू के तटों वाली सुजनता रूपी नदी ! हा ! मेरे जैसों की आश्रयभ्त । हाय । कामदेव का बाजार, सौभाग्य रूपी विक्रय पदार्थों की खान नष्ट हो गयी।

वसन्तसेना को विट ने गुणों की खान बतलाया है । उस खान के नष्ट हो जाने पर विट बहुत दुःखी होता है ।

टिप्पणी : रूपक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है । करुण रस है ।

20.10 नवम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'व्यवहार' नामक नवम अंक है । इसमें शकार द्वारा चारुदत्त पर लगाये गये अभियोग पर विचार दिखाया गया है । शकार न्यायालय में जाकर सूचना देता है कि पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में वसन्तसेना मृत पड़ी है तथा उसकी हत्या का आरोप चारुदत्त पर लगाता है । न्यायाधिकारी वास्तविक तथ्य को जानने के लिए वसन्तसेना की माता को बुलाते है तो पता चलता है कि वह चारुदत्त से मिलने गई थी । यह सुनकर न्यायाधिकारी चारुदत्त को बुलाते है । चारुदत्त घबड़ाहट तथा दुःख के कारण वसन्तसेना के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाता है । इतने में चन्दनक से अपमानित हुआ वीरक आता है तथा गाड़ी में बैठकर जाती हुयी वसन्तसेना के बारे में कहता है । वीरक को जीर्णोद्यान भजा जाता है वह पता लगाता है कि वहाँ कोई मृत स्त्री पड़ी है । इसी बीच विदूषक भो वसन्तसेना के गहने लेकर न्यायालय में आ जाता है । शकार तथा विदूषक में वाद विवाद होता है तथा मारपीट में आभ्षण भ्मि पर गिर जाते है । शकार कहता है कि ये आभ्षण वसन्तसेना के है और इन्हीं के कारण चारुदत्त ने वसन्तसेना की हत्या की है । चारुदत्त यह स्वीकार करता है कि ये आभ्षण वसन्तसेना के है किन्तु यह स्पष्ट नहीं कर पाता कि ये आभ्षण उसके पास कैसे आये ? इन सभो घटनाओं से चारुदत्त के विरूद्ध अभियोग सिद्ध हो जाता है । न्यायाधिकारी अपना निर्णय राजा पालक के पास भजते है कि चारुदत्त ब्राह्मण है अतः इसे मृत्युदण्ड न देकर धन सहित राज्य से बाहर कर दिया जाए । किन्तु राजा पालक चारुदत्त

को मृत्युदण्ड की आज्ञा देता है । यह सुनकर चारुदत्त अत्यन्त दुःखी होकर अपने पुत्र रोहसेन को याद करता है । नवम अंक यहाँ समाप्त हो जाता है ।

20.11 नवम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम् ।
तैः पक्षापरपक्षवर्द्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते
संक्षेपादपवाद एव सलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ।।

अन्वय : पुरुषाः न्यायेन दूरीकृतं कार्यं छन्नं उपक्षिपन्ति, स्वयं रागाभिभ्ताः दोषान् अधिकरणे न कथयन्ति, पक्षापरपक्षवर्द्धितबलैः तैः दोषैः नृपः स्पृश्यते संक्षेपात् द्रष्टुः अपवादः एक सुलभः गुणः दूरतः ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में न्यायाधिकारी की समाज में निन्दा के कारणों को कहते है –

व्याख्या : लोग (वादी तथा प्रतिवादी) न्याय से रहित गलत कार्य को दूसरे रूप में उपस्थित करते है। स्वयं आसक्ति से युक्त होकर दोषों को न्यायालय में नहीं कहते हैं । वादी और प्रतिवादी दोनों के द्वारा जिसके सामर्थ्य (अपकीर्तिजन) को बढ़ा दिया गया है ऐसे दोषों से राजा छुआ जाता है (अर्थात् निर्णय की अयथार्थता का दोष राजा पर लगता है) संक्षेप में न्यायाधीश को अपकीर्ति मिलना सुगम है कीर्ति तो दूर की बात है।

वादी तथा प्रतिवादी न्यायाधिकारियों को सत्य बात छिपाकर चालाकी से अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं । न्यायाधिकारी को उन्हीं बातों को सत्य मानकर निर्णय करना पड़ता है । अतः सही निर्णय अत्यन्त मुश्किल हो जाता है और न्यायाधिकारी समाज में निन्दा के पात्र बन जाते है । ऐसा लगता है प्राचीनकाल मे भो न्यायप्रणाली दोषों से रहित नहीं थी ।

टिप्पणी : काव्यलिङ्ग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

शास्त्रज्ञः, कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधन
स्तुल्यो मित्र–पर–स्वकेषु, चरितं दृष्ट्वै दत्तोत्तरः ।
क्लीबान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो,
द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयो, राज्ञश्च कोपापहः ।।

अन्वय : शास्त्रज्ञः, कपटानुसारकुशलः वक्ता न च क्रोधनः मित्रपरस्वकेषु तुल्यः चरितं दष्ट्वा एव दत्तोत्तरः क्लीवान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्म्यः न लोभान्वितः द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयः च राज्ञः कोपावहः च।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् नाटक के नवम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में न्यायाधीशोचित गुणों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है –

व्याख्या : शास्त्रों का ज्ञाता, कपट को समझने में कुशल, वक्ता तथा क्रोध न करने वाला होता है । मित्र शत्रु तथा स्वजनों में समान भाव रखने वाला (वादी तथा प्रतिवादी) व्यवहार को देखकर निर्णय देने वाला, दुर्बलों का रक्षक, धूर्तों को दण्ड देने वाला, धार्मिक लोभरहित, तथा उपाय के संभव रहने पर दूसरों की यथार्थ बात को जानने में दत्तचित्त एवं राजा के क्रोध को शान्त करने वाला होता है ।

न्यायाधिकारी के बारे में कहा है कि उसे शास्त्रज्ञ, अच्छा वक्ता, समभाव रखने वाला, हाजिर जवाबी,
धार्मिक, लोभ से रहित, अशक्तों का रक्षक, धूर्तों को दण्डित करने वाला, वास्तविकता का पता लगाने वाला तथा वाणी की चतुरता से राजा के क्रोध को शान्त करने वाला होना चाहिए ।

टिप्पणी : शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

द्वार्भावे – अवसर या उपाय होने पर ।

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशङ्खाकुलं,
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्त्राश्रयम्
नानावाशककङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ।।

अन्वय : चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशूड.खाकुलं पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्त्राश्रयं नानावाशककङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिस्रैः समुद्रायते ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्घृत है । इस श्लोक में कवि ने चारुदत्त के मुख से कहलाया है कि न्यायालय में प्रवेश करना समुद्र के समान दुष्कर है –

व्याख्या : जहाँ चिन्तन में तत्पर तथा निमग्न ही जल के समान है, जो दूत रूपी लहरों और शखों से भरा हुआ है जिसमें इधर–उधर विद्यमान गुप्तचर रूपी घड़ियाल और मगरमच्छ है, जो हाथी और घोड़े रूपी हिंसक जन्तुओं का आश्रय स्थल है, जो बहुत प्रकार के शब्द करने वाले वादी और प्रतिवादी रूपी कंक पक्षियों से व्याप्त है, जो कायस्थ रूपी सर्पो का स्थान है, जिसका नीति रूपी किनारा टूट गया है, ऐसा न्यायालय हिंसक लोगों के कारण समुद्र के समान हो गया है ।

यहाँ न्यायालय को सागर के समान बताया है जिस प्रकार समुद्र में प्रवेश करना हिंसक जन्तुओं के कारण मुश्किल है उसी प्रकार श्रेष्ठ न्याय के लिए न्यायालय में जाना मुश्किलों से भरा हुआ है ।

टिप्पणी : रूपक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

दूत राजदूत, चार गुप्तचर, वाशक शब्द करने वाले, वादी प्रतिवादी जन,

नीति0 जिस प्रकार नदियों के द्वारा सागर तट काट दिया जाता है इसी प्रकार नीति के द्वारा मर्यादा को तोड़ दिया जाता है ।

कंकपक्षी – समुद्रतट पर विचरण करने वाला पक्षी विशेष ।

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं,
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि ।
स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा,
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम् ।।

अन्वय :–येन हि समुद्रं उदकोच्छ्रयमात्रशेषं कृत्वा अनपेक्षितानि धनानि दत्तानि श्रेयसां एकनिधिः सः महात्मा धनार्थं अवैरिजुष्टं पापं कथम् इव करिष्यति ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्घृत हैं इस श्लोक में न्यायाधिकारी कहता है कि दया–दाक्षिण्यादि से युक्त चारुदत्त के द्वारा वसन्तसेना का वध किसी प्रकार नहीं किया जा सकता –

व्याख्या : जिस चारुदत्त ने (समस्त रत्नों का दान करके) समुद्र को केवल जल की प्रचुरता मात्र है शेष जिसमें ऐसा बनाकर (याचकों द्वारा) बिना मांगे ही धन सम्पतियों का दान कर दिया, कल्याणों का सबसे बड़ा आश्रय वह महात्मा धन के लिए शत्रुओं के द्वारा भो न करने योग्य पाप कैसे करेगा ? अर्थात् नहीं कर सकता है ।

जो चारुदत्त इतनी उदारप्रकृति का है कि जिस तरह समुद्र में से सभो रत्नों तथा बहुमूल्य पदार्थों को हटा देने पर समुद्र का केवल जल मात्र शेष रह जाता है उसी तरह उस चारुदत्त ने भो धन–धान्य इत्यादि का दान करके केवल अपने अस्तित्व मात्र को शेष रखा है वह महात्मा धन के लिए वसन्तसेना को मारेगा, यह कथमपि संभव नहीं है ।

टिप्पणी :– वसन्ततिलका छन्द तथा अतिशयोक्ति अलंकार है ।

विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे,
क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य ।
अथ रिपुवचनात्त्वं ब्राह्मणं मां निहंसि,
पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः ।।

अन्वय :– विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे, वीक्ष्य अद्य इह शरीरे क्रकचं दातव्यम् अथ रिपुवचनात् वा ब्राह्माणं मां निहंसि, पुत्रपौत्रैः समेतः नरकमध्ये पतसि ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के नवम अंक से उद्धृत है । भावी मृत्यु को निश्चित जान चारुदत्त दिव्य परीक्षा के साधन विष, पानी तुला तथा अग्नि को साक्षी मानकर स्वयं को निरपराध मानता है तथा क्रोधवश मृत्युदण्ड देने वाले को नरकगामी बनाता है –

व्याख्या :– मेरे विचार में विष, पानी, तुला तथा अग्नि से परीक्षा अभोष्ट है, अतः आज ठीक तरह से विचार करके मेरे शरीर पर 'आरा' चलवाना चाहिए । यदि शत्रु शकार के वचनों से ही मुझ ब्राह्मण को मार डालते हो तो पुत्र, पौत्रों के साथ नरक के मध्य गिरोगे ।

टिप्पणी :– काव्यलिंग अलंकार तथा मालिनी छन्द है । प्राचीनकाल में किसी व्यक्ति को निरपराध साबित करने के लिए दिव्य परीक्षा होती थी । जैसा कि याज्ञवल्क्य ऋषि ने बतलाया है – (1) विष खिलाने पर भो विष का प्रभाव न होना (2) पानी में डुबोने पर भो न मरना बराबर का वजन रखने पर भो निरपराधी का पलड़ा ऊपर उठ जाना (4) हाथ पर अभिमत्रित पीपल के सात पत्ते रखकर उसके ऊपर जलता हुआ गोला रखने पर भो न जलना । ये किसी के निर्दोष होने के प्रमाण माने जाते थे । वीक्ष्य – भली–भांति देखकर, वि + ईक्ष्–ल्यप् ब्राह्मण ब्राह्मणः अपत्यम् पुमान् ब्राह्मणः ब्राह्मण् + अण् ।

ऐसा लगता है कि तत्कालीन न्यायप्रणाली तथा आज की न्यायप्रणाली समान है । विचारपूर्वक निर्णय लेना उस समय भो संभव नहीं था ।

20.12 दशम अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

'संहार' नामक इस अन्तिम अंक में सभो कथाओं का उपसंहार हो जाता है । एक तरफ तो वसन्तसेना 'वधू' पद से अलकृत होती है दूसरी तरफ राजा पालक को मारकर आर्यक उज्जयिनी के राज्य का स्वामी बन जाता है । प्रथम दृश्य में दो चाण्डाल चारुदत्त को वध स्थान की ओज ले जाते हुए दिखाई देते हैं । चारुदत्त को मृत्युदण्ड की वेशभ्षा पहना दी गई है। उसे देखने अपार भोड़ लगी है सभो अत्यन्त दुःखी हो रहे है । इस समय शकार का सेवक स्थावरक कैदखाने से कूदकर भागा हुआ चाण्डालों के पास आता है तथा कहता है कि वसन्तसेना को शकार ने मारा है । इधर शकार भो स्थावरक को ढूंढता हुआ वहां आ जाता है और स्थावरक को झूठा सिद्ध कर देता है । द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना और भिक्षु चारुदत्त के घर की ओर जाते है । किन्तु भोड़ को देखकर वसन्तसेना उस भोड़ का कारण जानना चाहती है । इतने में चारुदत्त वध की चाण्डलों की आखिरी घोषणा सुनाई देती है । अतः वसन्तसेना और भिक्षु शीघ्रता से मृत्यु स्थल की ओर जाते हैं । इधर चाण्डाल चारुदत्त का वध करने के लिए तलवार खींचता है लेकिन तलवार हाथ से गिर जाती है । तब चाण्डाल चारुदत्त को शूली पर चढ़ाने की कहते है । इसी समय वसन्तसेना और भिक्षु वहाँ पहुँच जाते है । वसन्तसेना कहती है कि मैं ही वह अभागिनी हूँ । जिसके कारण आर्य चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया गया है । वसन्तसेना को देखकर चारुदत्त प्रसन्न होता ह । इधर चाण्डाल राजा पालक को वसन्तसेना के जीवित होने की सूचना देने के लिए चले जाते हैं । शकार वसन्तसेना को देखकर घबड़ा जाता है । तृतीय दृश्य में शर्विलक का प्रवेश होता है । वह सूचना देता है कि 'आर्यक' ने राजा 'पालक' का वध कर दिया है । वह अपना और राजा का परिचय देकर चारुदत्त से 'कुशवती' नगरी का राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना करता है । तभो शकार को पकड़ कर लोग चारुदत्त के पास लाते है ।

शर्विलक उसे मृत्युदण्ड देना चाहता है किन्तु चारुदत्त के क्षमाकर देता है । चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त मृत्युदण्ड से दुःखी उसकी धर्मपत्नी धूता अग्नि में प्रवेश होना चाहती है । तभो चारुदत्त वहाँ आकर बोलता है उसकी आवाज पहचानकर धूता प्रसन्न हो जाती है । वसन्तसेना तथा धूता परस्पर अलिङ्गन करती है । इसी समय शर्विलक वसन्तसेना से कहता है कि आर्यक राजा तुम्हे वधू पद से अलंकृत करते हैं । भरतवाक्य के साथ नाटक का दशम अंक समाप्त हो जाता है ।

20.13 दशम अंक के प्रमुख श्लोकों की सप्रसंग व्याख्या

मखवशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं मे,
सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।
मम मरणदशायां वर्त्तमानस्य पापै,
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ।।

अन्वय :— पुरस्तात् मे मखशतपरिपूतं गोत्रं सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः उद्भासितं मरणदशायां वर्तमानस्य मम तत् पापैः असदृशमनुष्यैः घोषणायां घुष्यते ।

प्रसंग :— प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक रचित उनके प्रसिद्ध नाटक मृच्छकटिकम् के दशम अंक उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त व्यथित होकर कहता है कि किस तरह पूर्वजों के द्वारा किए गए श्रेष्ठ कर्मों से यश को प्राप्त होने वाला मेरा कुल कलुषित किया जा रहा है —

व्याख्या :— पहले सैकड़ो यज्ञो से पवित्र किया गया मेरा वंश सभास्थलों में लोगों से भरे हुये यज्ञस्थलों पर, वेदों के पाठों से प्रकाशित हुआ था, मरणावस्था में विद्यमान होने पर मेरा वही कुल पापी तथा अयोग्यजनों के द्वारा घोषणा स्थल में घोषित किया जा रहा है या पुकारा जा रहा है ।

चारुदत्त कहता है कि मेरा कुल पूर्वजों के द्वारा आचरित श्रेष्ठ कर्मों के कारण महान् था किन्तु इस समय अपराध घोषणा स्थल पर मेरे अपराध की घोषणा कर किस प्रकार कलुषित किया जा रहा है ।

टिप्पणी :— विषम अलंकार तथा मालिनी छन्द है ।

चैत्य — यज्ञ का स्थान चित्या—अग्नि चि + क्यप् चैत्यम् चित्या + अण्

अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः, प्रयान्ति मे दूरतरं वयस्याः ।
परोऽपि बन्धुः सुखसंस्थितस्य मित्रं, न कश्चिदिवषमस्थितस्य ।।

अन्वय :— अमी में वयस्याः वस्तान्तनिरुद्धवक्त्राः दूरतरं प्रयान्ति हि सुखसंस्थितस्य परः अपि बन्धुः विषमस्थितस्य कश्चित् मित्रं न ।

प्रसंग :— प्रस्तुत श्लोक कवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में कवि ने चारुदत्त के माध्यम से कहता है दुःख में निमग्न व्यक्ति का कोई भो मित्र नहीं होता है ।

व्याख्या : ये मेरे मित्र वस्त्र के छोर से अपना मुंह ढके हुए दूर जा रहें हैं क्योंकि सुख की अवस्था में अन्य जन भो सम्बन्धी हो जाते है किन्तु आपत्ति में स्थित व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता है ।

चारुदत्त दूर भागते हुए मित्रों को देखकर स्वयं की विपद् अवस्था को देखते हुए विचार करता है कि विपत्ति में कोई भो किसी का सहायक नहीं होता है ।

टिप्पणी :— अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा आर्या छन्द है ।

प्राप्तोऽहं व्यसनकृशां दशामनार्या,
यत्रेदं फलमपि जीवितावसानम् ।

एषा च व्यथयति घोषणा मनो मे,
श्रोतव्यं यदिदमसौ मया हतेति ।।

अन्वय :– अहं व्यसनकृशां अनार्यां दशां प्राप्तः यत्र इदं जीवितावसानं फलं अपि एषा च घोषणा मे मनः व्यथयति यत् इदं श्रोतव्यं असौ मया हता इति ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् दशम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में चारुदत्त विपत्तिग्रस्त स्वयं की शोचनीय दशा से व्यथित हो रहा है ।

व्याख्या :– मैं विपत्ति के कारण हीन एवं गर्हित दशा को प्राप्त हो गया हूँ । जिस दशा का जीवन की समाप्ति फल है और यह घोषणा मेरे मन को पीड़ित कर रही है । जो यह सुनना पड़ रहा है कि इस (वसन्तसेना) को मैंने मारा है ।

चारुदत्त कहता है कि वसन्तसेना मेरी प्राणभत् थी किन्तु विपत्ति के कारण उसे मैने मारा है ऐसा सुनने में असमर्थ होते हुए भो विवशता के कारण सुनना पड़ रहा है ।

टिप्पणी :– प्रहर्षिणी छन्द है ।

रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला,
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति ।
एते च बध्यपटहध्वनयस्तथैव,
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः ।।

अन्वय :– कान्तागमेन तदेव रक्तं वरवस्त्रं इयं माला च वरस्य यथा हि विभति तथैव च एते वध्यपटहध्वनिभिः समानाः जाताः ।

प्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उद्धृत है । वसन्तसेना के मृत्युस्थल पर अकस्मात् आ जाने से चारुदत्त को वध्यस्थल के चिह्न विवाहस्थल के चिह्न में परिवर्तित से लग रहे हैं–

व्याख्या :– प्रिया के आ जाने से वही लाल वस्त्र दूल्हे के वस्त्र और यह माला वरमाला के समान शोभित हो रही है। तथा उसी तरह वध के लिए बजने वाली नगाड़े की ध्वनियाँ विवाह के बाजों की ध्वनियाँ के समान हो गयी है । अर्थात् अप्रिय वस्तु प्रिय वस्तु के रूप में परिवर्तित हो गई है ।

वसन्तसेना के मृत्युस्थल पर आने पर चारुदत्त को अकस्मात् जीवनदान मिल जाता है ।

टिप्पणी :– उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है ।

दिष्ट्या भो व्यसनमहार्णवादपारा–
दुत्तीर्णं गुणधृतया सुशीलवत्या ।
नावेव प्रियतमया चिरान्निरीक्षे,
ज्योत्स्नाढ्यं शशिनमिवोपरागमुक्तम् ।।

अन्वय : भोः दिष्ट्या गुणधृतया सुशीलवत्या नावा इव प्रियतमया अपारातव्यसन महार्णवात् उत्तीर्ण उपरागमुक्त ज्योत्स्नाढ्यं शशिनमिव चिरात् निरीक्षे ।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उदधृत है । इस श्लेषात्मक श्लोक में वसन्तसेना की तुलना नौका से करते हुए तथा चारुदत्त को चांद के समान बताते हुए । शर्विलक अत्यन्त प्रसन्न होकर कहता है ।

व्याख्या : हे सज्जनों ! सौभाग्य से गुणों (उदारता, दाक्षिण्य आदि, नाव पक्ष में–रस्सियों से) से आकृष्ट, सुन्दर स्वभाव बाली (पक्ष में – अच्छी बनी हुयी, सुघटित) नौका के समान प्रियतमा वसन्तसेना के द्वारा पार न कर सकने योग्य विपत्ति रूपी महासागर से बचाये गये चारुदत्त को राहुग्रास से मुक्त चान्दनी से युक्त चन्द्रमा के समान मैं बहुत समय में देख रहा हूँ ।

जिस तरह राहु से मुक्त तथा चांदनी से युक्त चन्द्रमा लोगों के लिए आनन्ददायक होता है । उसी तरह विपत्ति से मुक्त और वसन्तसेना से युक्त चारुदत्त का दर्शन शर्विलक के लिए आनन्दकारी बन गया है।

टिप्पणी : रूपक, उपमा, श्लेष अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है ।

उपरागः उपरज्यते इति उपरागः,

उप + रञ्ज् + घञ्

कांश्चितुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं,
कांश्चित्पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयाकुलान्
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः ।।

प्रसंग : प्रस्तुत श्लोक महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिकम् के दशम अंक से उद्धृत है । इस श्लोक में सुख–दुःख से परिपूर्ण इस जीवन में विधाता के द्वारा खेली गई क्रीड़ाओं का वर्णन चारुदत्त करता है –

अन्वय : कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः एषः विधिः अन्योऽन्यं प्रतिपक्षसंहतिं इमां लोकस्थितिं बोधयन् क्रीडति, कांश्चित् तुच्छयति, कांश्चित वा प्रपूरयति कांश्चित् उन्नतिं नयति कांश्चित् पातविधौ करोति पुनः कांश्चित् च आकुलान नयति ।

व्याख्या : कुऐं के रहट की बाल्टियों की पद्धति का अनुसरण करने वाला यह भाग्य परस्पर विरोधी

धर्मों की समूह रूप इस लोक स्थिति को बताता हुआ खेलता है । किन्हीं को रिक्त (तुच्छ) करता है किन्ही को पूर्ण करता है । किन्ही को उन्नति की ओर ले जाता है किन्हीं का पतन करता है और किन्हीं को व्याकुल कर देता है ।

चारुदत्त अपने जीवन में विधि के विभिन्न प्रभावों को देखकर कहता है कि कूप के रहट की भांति भाग्य भो सांसारिक जनों की दशा में परिवर्तन करता रहता है कभो किसी को ऊपर लाता है तो किसी को नीचे गिरा देता है । चारुदत्त अपने जीवन में भाग्य की इन विलक्षणता का स्वयं अनुभव कर चुका है। अतः वह इन घटनाओं से अत्यधिक दुःखी या अत्यन्त प्रसन्न नहीं होना चाहता ।

टिप्पणी : निदर्शना अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द तुच्छति हल्का या दरिद्र करता है ।

तुच्छं करोति इति तुच्छ + णिच् (नामधातु)

20.14 पारिभाषिक शब्दावली

संहतबलाकगृहीतशङ्.ख–बलाकाएँ मेघो के साथ पंक्तिबद्ध या समूह रूप में चलती है।

वायसीभिः रक्षितः–यह प्रसिद्ध है कि कोयल अपना अण्डा कोवा के घोंसले में रख देती है ।कौवी भ्रमवश अपना अण्डा समझकर उसकी रक्षा करती हुई पालन–पोषण करती रहती है।

पुष्पकरण्डक – एक उद्यान का नाम है जिसका अर्थ है – पुष्पों की डलिया ।

मृच्छकटिकम् – मिट्टी की गाडी ।

मृत्शकटिका की सुवर्णशकटिका पर विजय, दरिद्रता की वैभव पर, प्रकृति की विज्ञान पर होने वाली विजय का अभिव्यञ्जक है ।

मृच्छकटिकम् प्रकरण – मृच्छकटिक को रूपक के एक भेद 'प्रकरण' की कोटि में रखा है । प्रकरण में वृत्त लौकिक तथा कविकल्पित होता है । श्रृंगार मुख्य रस होता है । ब्राह्मण आदि में से कोई एक नायक होता है । ये सभी लक्षण मृच्छकटिकम् में घटित होते हैं ।

कंकपक्षी – समुद्रतट पर विचरण करने वाला पक्षी विशेष ।

20.15अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 भविष्यवाणी के माध्यम से किसे राजा घोषित किया गया था –
(क) पालक (ख) आर्यक (ग) चारुदत्त (द) शर्विलक

प्र.2 'मृच्छकटिकम्' का शाब्दिक अर्थ है –
(क) मिट्टी की गाडी (ख) सोने की गाड़ी

(ग) लकड़ी की गाडी　　　　　(द) उपरोक्त में कोई नहीं

प्र.3　नाटक के अंत में राजा कौन बनता है –

(क) शकार　(ख)पालक　(ग) वसन्तसेना　(द) आर्यक

प्र.4　'कूलवधु' पद से कौन अलंकृत होता है –

(क) मदनिका　(ख) द्यूता　(ग) वसन्तसेना　(द) चेटी

प्र.5　भ्रमवश वसन्तसेना किसकी गाड़ी में बैठ जाती है –

(क) चारुदत्त की(ख) शकार की (ग) शर्विलक की(द) आर्यक की

प्र.6　'वन्यनागः' से यहाँ तात्पर्य है –

(क) जंगली हाथी (ख) जंगली नाग (ग) जंगल का पर्वत (द) जंगली सर्प

प्र.7　'पुष्पकरण्डक' उद्यान में वसन्तसेना के आने में विलम्ब का कारण था –

(क) गाडी बदल जाने से　　　(ख) चक्र टूट जाने से

(ग) लगाम की रस्सी टूटने से　　(द) वर्धमानक द्वारा विश्राम करने से

प्र.8　'वायसीभिः रक्षितः' के समान था –

(क) चारुदत्त　(ख) शकार　(ग) आर्यक　(द) वसन्तसेना

अभ्यास –

1. प्राचीन काल में दिव्य परीक्षा के कौन–कौन से साधन थे ?
2. मृच्छकटिकम् के पंचम अंक के आधार पर प्रकृति–चित्रण कीजिए ?
3. न्यायाधीश में कौन–कौन से प्रमुख गुण होने चाहिए ?
4. मृच्छकटिकम् के षष्ठ अंक का सार अपने शब्दों में लिखिए ?

बोध प्रश्न एवं अभ्यासों के उत्तर

1.	ख	6.	क
2.	क	7.	क
3.	घ	8.	ग
4.	ग		
5.	ख		

अभ्यासों के उत्तर

1. विष, पानी, तुला, अग्नि
2. देखिए पंचम अंक के प्रमुख श्लोक
3. देखिए नवम अंक का श्लोक शास्त्रज्ञ
4. देखिए षष्ठ अंक की संक्षिप्त कथावस्तु

20.16 सारांश

इस इकाई में आप शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्' के पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या पढ़ चुके हैं । पंचम अंक में वसन्तसेना व चारुदत्त के प्रणय की परिणति प्रस्तुत की गई है। उत्कण्ठित अवस्था में बैठे हुए चारुदत्त को जब वसन्तसेना के आगमन का समाचार मिलता है वह हर्षित हो उठता है । विट के साथ जब वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाती है तो दोनों वर्षा का सुन्दर वर्णन करते हैं । शूद्रक के द्वारा प्रकृति चित्रण का मनोहर रूप इस अंक में प्रस्तुत किया है । जब चारुदत्त को यह पता चलता है कि वसन्तसेना स्वर्णभाण्ड लौटाने आयी है तब उसे सुखद आश्चर्य होता है । षष्ठ अंक उस घटना से सम्बन्धित है, जिसने नाटक को शीर्षक प्रदान किया है । चारुदत्त का पुत्र रोहसेन सोने की गाड़ी के लिए जिद करता है । रदनिका द्वारा प्रदत्त मौखिक सान्त्वना से वह सन्तुष्ट नहीं होता है । वसन्तसेना उस दृश्य को देखकर द्रवित हो जाती है और अपने सोने के आभूषण उतार कर मिट्टी की गाडी में रख देती है तथा कहती है कि इन आभूषणों से सोने की गाड़ी बनवा लेना । यह वाक्य ही नाटक के नामकरण का आधार है । इसके अतिरिक्त इस अंक में वसन्तसेना तथा आर्यक की गाडी बदल जाने की घटना का वर्णन है । जो मुख्य अंशों के माध्यम से स्पष्ट है । सप्तम अंक में आर्यक को चारुदत्त द्वारा अभय–दान का वर्णन है ।चारुदत्त वसन्तसेना के स्थान पर आर्यक को देखकर तथा आर्यक की बात सुनकर उसकी रक्षा करने का वचन देता है । अष्टम अंक में शकार द्वारा

वसन्तसेना के वध का वर्णन है । गाड़ी के अदला–बदली के कारण शकार जब गाड़ी में वसन्तसेना को देखता है तो प्रसन्न होकर उसे रमण के लिए प्रार्थना करता है किन्तु वसन्तसेना के द्वारा इन्कार कर दिए जाने पर शकार उसका गला दबा देता है । तथा हत्या का अभियोग चारुदत्त पर लगाने के लिए न्यायालय चला जाता है । नवम अंक में न्यायालय के दृश्य को उपस्थित किया है इस अंक चारुदत्त के ऊपर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग लग जाता है । अपराध घोषित होने पर राजा पालक चारुदत्त को मृत्युदण्ड दे देता है । दशम अंक में चारुदत्त को मारने के लिए शीघ्रता करने पर भी अचानक वसन्तसेना उस स्थान पर आ जाती है । चारुदत्त मृत्युदण्ड पाने से बच जाता है । इधर राजा पालक का भी 'आर्यक' वध कर देता है तथा वसन्तसेना को 'कूलवधू' पद से अलंकृत करता है ।

इस इकाई को पढ़ने के बाद पंचम अंक से लेकर दशम अंक तक की संक्षिप्त कथावस्तु तथा प्रमुख स्थलों की व्याख्या विद्यार्थीगण आसानी से कर सकते हैं ।

20.17 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ,1995
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी1998

इकाई – 21

मृच्छकटिकम् – प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

इकाई रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

स्नातकोत्तर पूर्वार्द्ध के प्रश्न–पत्र (ललितसाहित्य एवं नाटक) से सम्बन्धित इस इकाई में 'मृच्छकटिकम्' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण प्रस्तुत किया गया है । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1 मृच्छकटिकम् के नायक चारुदत्त का चरित्र–चित्रण बता सकेंगे ।

2 मृच्छकटिकम् के नायिका वसन्तसेना का चरित्र–चित्रण बता सकेंगे ।

3 मृच्छकृटिकम् के अन्य प्रमुख पात्र विदूषक, शकार, शर्विलक एवं धूता के चरित्र चित्रण की प्रमुख विशेषताएँ बता सकेंगे ।

21.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप मृच्छकटिकम् के प्रमुख पात्रों के चरित्र–चित्रण का परिचय प्राप्त कर रहे है। इस इकाई से प्र्व 'मृच्छकटिकम्' के मुख्य अंशों की व्याख्या के माध्यम से सम्पूर्ण नाटक का ज्ञान प्राप्त कर चुके है । तथा प्रकरण में आने वाले पात्रों से परिचित भो हो गए होग। इस इकाई के माध्यम से उनकी चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट हो जायेगी ।

भारतीय नाट्यसाहित्य में 'नायक' रूपक का एक तत्त्व माना गया है । नाट्यसाहित्य में उसके सहायकों तथा प्रतिनायक का भो वर्णन किया गया है । साथ ही नायिका का भो विस्तृत विवेचन मिलता है । मृच्छकटिकम् चरित्र चित्रण की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है । इसकी कथावस्तु मध्यमवर्ग के जीवन के आधार पर कल्पित की गई है । इसमें एक तरफ तो समाज के सभो वर्गों के पात्र मिलते है तो दूसरी ओर चोर, जुआरी, विट चाण्डाल आदि भो मिलते है । एक तरफ धूता जैसी पतिव्रता नारी का चित्रण है तो दूसरी ओर वेश्या और गणिकाओं का भो । इस नाटक की श्रेष्ठता इसके पात्रों से है। इसके पात्र सजीवता की मूर्ति है । वे इसी लोक के जीते जागते प्राणी है । मृच्छकटिक के पात्र किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि नहीं है, वे अपनी निजी विशेषताएँ रखते है । सभो पात्रों के कार्य और व्यवहार अपनी–अपनी परिस्थिति के अनुसार दिखलाये गए है । मृच्छकटिक की यह विशेषता संस्कृत के अन्य नाटकों में नहीं मिलती । यही कारण है संस्कृत साहित्य में एकमात्र चरित्र प्रधान नाटक मृच्छकटिकम् है । पुरूष एवं स्त्री पात्रों में से पात्रों का विवेचन आगे किया जा रहा है ।

21.2 चारुदत्त का चरित्र चित्रण

मृच्छकटिक प्रकरण का नायक चारुदत्त है । भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार नायक के चार प्रकार माने जाते हैं – धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत । इन चारों प्रकार के नायकों में से चारुदत्त को धीरप्रशान्त नायक कहा जा सकता है । दशरूपक के अनुसार धीरप्रशान्त का लक्षण है – ''सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरप्रशान्तो द्विजादिक'' (2.4) चारुदत्त में सामान्य नायक के प्रायः समस्त गुण विद्यमान हैं ।

21.2.1 व्यक्तित्व :

चारुदत्त जन्मना ब्राह्मण होते हुए भो कमणा श्रेष्ठी है। उज्जयिनी नगरी के अति सम्पन्न वंश में चारुदत्त ने जन्म लिया है । उसके पूर्वजों ने ब्राह्मण होते हुए भो व्यापार के माध्यम से अपार धन सम्पत्ति अर्जित की थी । किन्तु चारुदत्त अपनी अतिशय उदारता और दानशीलता के कारण सारी सम्पत्ति निर्धनों को दे देता है और स्वयं दरिद्र हो जाता है। उसका व्यक्तित्व आकषक है, गुणी है और सुन्दर है । द्वितीय अंक में संवाहक वसन्तसेना को चारुदत्त का परिचय देता हुआ कहता है :–

यस्तादृशः प्रियदर्शनः .... (द्वि.अं.पृ0162)

इसी तरह सप्तम अंक में आर्यक चारुदत्त की प्रशंसा में कहता है – न केवलं श्रुतिरमणीयो दृष्टिरमणीयोऽपि (पृ0418) अर्थात् न केवल सुनने में ही अच्छे है अपितु देखने में भो अच्छे हैं । वसन्तसेना की हत्या का आरोप चारुदत्त पर लगता है । न्यायालय के न्यायाधिकारी भो उसके सौन्दर्य को देखकर कहते हैं –

घोणोन्नतंमुखमपाङ्गविशालनेत्रम् (9.16)

अर्थात् ऊँची नाकवाला, किनारों तक लम्बे नेत्रोंवाला यह मुख । वसन्तसेना की माता भो चारुदत्त को देखकर कहतो है– ''अयं स चारुदत्तः । सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम् ।'' (पृ0533)

21.2.2 उदार एवं दयालु :–

चारुदत्त अत्यन्त उदार एवं दयालु हैं । वह किसी को निराश नहीं करना चाहता । जब कोई श्लाघनीय कार्य करता है या उसे कोई शुभ समाचार सुनाता है तो चारुदत्त उसे पुरस्कार के रूप मे कुछ न कुछ देना चाहता है । अतिशय उदारता के कारण ही चोर के द्वारा आभ्षण चुराने पर वह दुःखी नहीं होता है। अपितु प्रसन्न होकर कहता है – यदसौ कृतार्थो गतः ।

कणपूरक जब मत्त हाथी को मार देता है तो उसके पराक्रम से प्रसन्न होकर उसे अंगूठी देना चाहता है किन्तु अंगुली में अंगूठी न होने से वह अपना दुपट्टा ही दे देता है । एकेन शून्यान्याभारणस्थानानि परामृश्य उर्ध्वं निःश्वस्यायं ममोपरि निक्षिप्तः । (पृ0 118) इसी तरह चेट जब वसन्तसेना के आगमन का समाचार देता है तो वह हर्षित होकर अपना दुपट्टा दे देता है – **भद्र! मे कदाचित् प्रियवचनं निष्फलीकतम्, तद्गृह्यतां पारितोषिकम् । (पृ0 318)**

चारुदत्त की यही उदारता, वसन्तसेना के आकर्षण का कारण बनती है । चारुदत्त के मन में प्राणिमात्र के लिए दया है । न तो वह किसी को कभो कष्ट देना चाहता है और न किसी को दुःखी देखना चाहता है । चारुदत्त के लिए चेट कहता है – सुजनः खलु भत्यानुकम्पकः । (3.2) चारुदत्त सेवकों के प्रति भो दयालु है । वह सोई हुई रदनिका को जगाना नहीं चाहता अलं सुप्तजनं प्रबोधयितुम् (पृ0191) इतना ही नहीं पशुपक्षियों के प्रति भो उसकी करूणा इस वाक्य से प्रकट होती है – वयस्य ! उपविश किमनेन, तिष्ठतु दयितासहितस्तपस्वी । (पृ0314)

21.2.3 शरणागतरक्षक

शरणागत की रक्षा जो एक भारतीय संस्कृति की अनुपम धरोहर है, चारुदत्त के चरित्र में विद्यमान है । वह शरणागत की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों तक की परवाह भो नहीं करता । आर्यक जब उसकी शरण में आता है तब वह स्पष्ट कहता है – अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् । (7.6) (अर्थात् प्राणों को भले ही त्याग दूंगा, किन्तु शरण में आये हुये तुम्हें नहीं त्यागूंगा ।)

शरणागत रक्षक की पराकाष्ठा तब होती है जब षडयन्त्र रचाकर हत्या के अभियोग में चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिलाने वाला शकार भो उसकी शरण में आकर प्राणरक्षा की भोख मांगता है । तब चारुदत्त शकार के अपराध को भ्ला कर कहता है अहह । अभयमभयं शरणागतस्य । (पृ0636)

21.2.4 धर्मपरायण तथा भाग्यवादी

चारुदत्त धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है । मृच्छकटिकम् के प्रारम्भ से ही चारुदत्त एक धर्म–कमनिरत व्यक्ति के रूप में दिखाई देता है । सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्मों का नियमपूर्वक अनुष्ठान करता है । जब मैत्रेय देवताओं के प्रति अश्रद्धा व्यक्त करता है तब वह कहता है – ''वयस्य ! मा मैवम् गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः।'' (पृ052) आगे भो कहता है –''तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकमभिः।'' (1.16)
धार्मिक प्रवृत्ति से युक्त होने के कारण वह भाग्यवादी भो है । उसकी भाग्यवादिता इस वाक्य से परिलक्षित होती है – भाग्यक्रमेणहि धनानि भवन्ति यान्ति। (1.13) इसी प्रकार चारुदत्त आर्यक से कहता है – स्वैभग्यैः परिरक्षितोऽसि (7.7)

भाग्यवादी होने के कारण उसका विश्वास ह कि धन का आना और जाना भाग्य के अनुसार ही होता है । भाग्यवादिता एवं धर्मनिष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण हम उसके निम्न कथन के रूप में देख सकते हैं, जब वह यह आह्वान करता है –

प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्याऽपि मेऽद्य ।
प्रबलपुरुषवाक्यैर्भाग्यदोषात्कथञ्चित् ।
सुरपतिभवनस्था यत्र तत्र स्थिता वा,
व्यपनयतु कलङ्क स्वस्वभावेन सैव ।। (10.34)

इसी सन्दभ में शकुन और अपशकुन पर उसका दृढ़ विश्वास है । न्यायालय में जाते समय मार्ग होने वाले अपशकुनों को देखकर वह घबड़ा जाता है और अपनी भावी मृत्यु सोचने लगता है। भाग्यवाद में विश्वास की पराकाष्ठा उसका निम्न वक्तव्य है –

कांश्चितुच्छयति प्रपूरयति व कांश्चिन्नयत्पुन्नति
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलान्
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिका–न्यायप्रसक्तो विधिः । (10.60)

21.2.5 आदर्श प्रेमी

मृच्छकटिकम् में चारुदत्त को एक उच्चकोटि का आदर्श प्रेमी चित्रित किया गया है । एक प्रेमी के रूप में उसका चरित्र चारित्रिक दृढ़ता से युक्त है । वसन्तसेना के प्रति उसका प्रेम अत्यन्त गहरा एवं सुकुमार है । जब तक वसन्तसेना उससे आकर नहीं मिलती है, तब तक वह उसके वियोग में तडपता रहता है । अभियोग प्रकरण में भो वह इन शब्दों में वसन्तसेना को स्मरण करता है –

न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवनेन कृत्यम् ।

अंत में जब वह वध स्थान पर अचानक वसन्तसेना को देखता है तब वह हृदय से गद्‌गद् हो उठता है तथा उसे संजीवनी बूँटी के तुल्य बतलाता है ।

यद्यपि वह एक गणिका से प्रेम करता है किन्तु अपनी पत्नी धूता से प्रेम में लेशमात्र भो कमी नहीं है वह उसे पवित्र मानता हुआ उसका आदर करता है । वेश्या के आभ्षणों को भो अभ्यन्तर प्रवेश के योग्य नहीं समझता है । वह परनारी पर दृष्टि भो नहीं डालना चाहता – ''न युक्तं परकलत्रदर्शनम्'' (पृ058) जब अनजाने में अन्य स्त्री से उसके वस्त्रों का स्पर्श हो जाता है तो वह खिन्न होकर कहता है – ''इयमपरा का अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा'' (पृ058) अपनी पतिव्रता स्त्री पर गर्व करता है और गर्हस्थ्य धर्म का पूर्णतया पालन करता है ।

21.2.6 प्रतिष्ठा प्रेमी

चारुदत्त को अपनी प्रतिष्ठा और चरित्र की उज्ज्वलता का ध्यान है । वह ऐसा कोई आचरण नहीं करना चाहता है जिससे उसकी अथवा उसके वंश की मान प्रतिष्ठा को धक्का लगता हो। वसन्तसेना के गहनों की चोरी के सम्बन्ध में विदूषक द्वारा झूठ बुलवाये जाने के उत्तर में कहता है – अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभशकारकम् । (3.26)

अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ही वह वसन्तसेना की धरोहर को लौटाना आवश्यक समझता है और असत्य बात कहकर बहुमूल्य रत्नमाला बदले में भजता है । यद्यपि वह जानता है कि सत्य बात जानने पर वसन्तसेना रत्नावली नहीं लेगी और समाज के लोग उसकी गरीबी के कारण सच घटना पर विश्वास नहीं करेंगे । इससे चारों ओर बदनामी होगी । वह विदूषक से कहता है – कः श्रद्धास्यति भ्तार्थं, सर्वो मां तुलयिष्यति (3.24) वसन्तसेना की हत्या अपराध सिद्ध होने पर उसे मृत्युदण्ड पाने का भय नहीं है, केवल दुःख है तो प्रतिष्ठा चले जाने का – न भोतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः । (10.27)

21.2.7 कलाप्रेमी

चारुदत्त कला–प्रिय व्यक्ति है । वह हर अच्छी कला का सम्मान करता है । उसमें कवि हृदय भो विद्यमान है । वर्षा–वर्णन जिन शब्दों के उसके द्वारा किया गया है वह प्रशंसनीय है । कवि होने के साथ–साथ वह संगीत का पारखी है । रेमिल के संगीत की ताल–लय तथा मूर्च्छना इत्यादि का विश्लेषण करते हुए सराहना करता है । शर्विलक के द्वारा मकान

में जब सेंध लगाई जाती है तब चोरी की अधिक चिन्ता न करके, सर्वप्रथम सेंध लगाने की कला की प्रशंसा करता है – अहो, दर्शनीयोऽयं सन्धिः । कथमस्मिन्नपि कमणि कुशलता ? (पृ0217)

21.2.8 पुत्र स्नेही :–

भारतीय संस्कृति के अनुकूल चारुदत्त का पुत्र प्रेम भो इस रूपक में दिखाई देता है । चारुदत्त अपने एकमात्र पुत्र रोहसेन से अत्यधिक स्नेह करता है । प्रथम अंक में ही वह सायंकालीन शीतल हवा से बचाने के लिए अपना दुपट्टा देता है । अपनी मृत्यु के पश्चात् अपने समान ही पुत्र से प्रेम करने के लिए विदूषक स आग्रह करता है –

नृणां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः ।
मयि यो वै तव स्नेहो रोहसेन स युज्यताम् ।। 9.62 ।।

इसी तरह मृत्युदण्ड के समय चाण्डालों से पुत्र दर्शन की याचना करता है – नापरीक्ष्यकारी दुराचारः पालक इव चाण्डालः, तत्परलोकार्थं पुत्रमुखं द्रष्टुमभ्यर्थये । (पृ0585–86) मृत्यु का समय सोचकर ब्राह्मणों का विभ्षण, देवकार्य तथा पितृकार्य का उपयोगी साधन 'यज्ञोपवीत' पुत्र को देता है तथा पुत्र की आलिङ्गन करता हुआ कहता है –

इदं तत् स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् । (10.23)

मृत्युस्थल पर पुत्र को देखकर वह अत्यधिक विचलित हो जाता है । पुत्र को शीघ्र घर जाने के लिये कहता हुआ सावधान करता है –

आश्रमं वत्स गन्तव्यं गृहीत्वाद्यैव मातरम् ।
मा त्वयि पितृदोषेण त्वमप्येवं गमिष्यति ।। (10.32)

इसके अतिरिक्त भो चारुदत्त में सत्यवक्ता, आदर्श मित्र, गुणग्राही, पत्नी के महत्त्व को समझने वाला आदि गुण पाये जाते हैं । नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी रूपक का नायक विनयी, प्रियदर्शन, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, लोकप्रिय, पवित्र, वाक्–कुशल, उच्चवंशोत्पन्न, स्थिर, युवक तथा वुि–उत्साह–स्मृति–प्रज्ञा–कला और स्वाभिमान से युक्त, शूरवीर दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रानुकूल कार्य करने वाला, तथा धार्मिक होना चाहिये । मृच्छकटिकम् के नायक चारुदत्त में प्रायः यह सभो गुण विद्यमान हैं । मृच्छकटिकम् के प्रथम अंक में चारुदत्त की प्रशंसा में विट कहता है – दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी । आदर्शः शिक्षितानां, सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः । सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधि कगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ।। (1.48)

21.3 वसन्तसेना का चरित्र–चित्रण

साहित्यदर्पणकार के अनुसार प्रकरण में नायिका कहीं कुल–कन्या होती है, कहीं वेश्या होती है और कहीं दोनों होती हैं । मृच्छकटिकम् एक ऐसा प्रकरण है जिसमें कुल स्त्री तथा गणिका दो नायिकाये हैं । इसमें कुल स्त्री धूता तथा गणिका के रूप में वसन्तसेना है । परन्तु धूता प्रस्तुत प्रकरण में नाममात्र के लिए है, वास्तविक नायिका तो वसन्तसेना है ।

21.3.1 व्यक्तित्व :–

वसन्तसेना नवयौवना, परमरूपवती, विलक्षण आचरणवाली तथा आकषक व्यक्तित्व वाली है । यह उसका दुर्भाग्य है कि वह गणिका कुल से उत्पन्न है । फिर भो उसने अपने दृढ़संकल्प तथा प्रयत्नों के फलस्वरूप अपने आपको कुलवधू के योग्य प्रमाणित किया है । घर आयी हुई वसन्तसेना को देखकर चारुदत्त उसकी प्रशंसा करता है – छादिता शरदभ्ण चन्दलेखेव भासते। (1.54)

वसन्तसेना एक सुन्दर तरुणी है और उज्जयिनी नगरी का भ्षण है – बालां स्त्रियं च नगरस्य विभ्षणं च । (8.23) विट कें शब्दों में वसन्तसेना उदारता का स्रोत है, सौन्दर्य में रति है, सुमुखी वह अलंकारों को भो अलंकृत करने वाली है और सौजन्य की सरिता है । (8.38) विट शकार द्वारा उसकी हत्या किये जाने पर भो कहता है – अपापा पापकल्पेन नगरश्रीर्निपातिता । (8.39)

21.3.2 वैभवशालिनी :–

वसन्तसेना उज्जयिनी की एक वैभवशालिनी गणिका है । माता की गणिका वृत्ति के कारण उसे विपुल सम्पत्ति प्राप्त है । उसकी समृद्धि को देखकर विदूषक कह उठता है – किं तावद् गणिकागृहम् अथवा कुवेरस्यभवन–परिच्छेद इति (पृ0 182) उसके पास समस्त वैभव है । उसे धन की लिप्सा नहीं हैं । शकार द्वारा भजी गयी दश सह मुद्राओं के कारण उसकी माता उसे शकार के पास जाने के लिये आदेश देती है तो वह तत्काल अस्वीकार कर देती है – यदि मां जीवन्तीमिच्छसि तदैवं पुनरहं न मात्राऽज्ञापयितव्या । (पृ0 235)। वसन्तसेना धन के स्थान पर गुणों की उपासिका है । विट द्वारा वेश्याओं की समदृष्टि का कथन किये जाने पर वह शान्तभाव से एक ही वाक्य में प्रेम प्रादुर्भाव का कारण बतलाती है –

गुणःखल्वनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कारः । (पृ0 80)

अष्टम अंक में गाड़ी बदल जाने के कारण जब वसन्तसेना शकार के उद्यान में पहुंच जाती है तो विट उसे देखकर कहता है – पूर्वं मानादवज्ञाय द्रव्यार्थे जननीवशात् । (8.17)

यह सुनकर वसन्तसेना शीघ्रता से निषेधात्मक सिर हिलाती है ।

21.3.3 उदारहृदया

वसन्तसेना उदारहृदयवाली नारी है । मदनिका एवं संवाहक से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रसंग उसकी– कोमल उदारता से ओत–प्रोत है । जब संवाहक उसकी शरण में आता है तो अपरिचित होने पर भो वह उसे अभयदान देती है । वह उसे ऋणमुक्त कराने के लिये अपना स्वर्णाभ्षण भज देती है । अपनी उदारता के कारण ही वह मदनिका को दासता से मुक्त कर देती है और मदनिका से कहती है – यदि मम छन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजनमभजिष्यं करिष्यामि । (पृ0 241–42) उसकी उदारता, निर्लोभता ही इस नाटक की आधारशिला है । चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को रोते हुए देखकर वह सवर्ण शकट बनवाने के लिये अपने आभ्षण दे देती है और कहती है – जात ! कास्य सौवर्णशकटिकाम् । (पृ0 37) जब चारुदत्त सुवर्ण भाण्ड के बदले रत्नावली भज देती है तो वह रत्नावली भजने के लिए चारुदत्त को उलाहना देती है । रत्नावली उसकी पत्नी धूता को सौपते हुए कहती है – अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि। (पृ0 236)

वास्तव में वसन्तसेना की उदारता निःस्वार्थ भावना से युक्त है तथा वह इस उदारता का कोई प्रतिदान नहीं लेना चाहती है । प्रतिदान तो दूर मुक्ति के श्रेय को भो स्वयं स्वीकार नहीं करना चाहती । उसी की उदारता के कारण मदनिका कुलवधू पद को प्राप्त कर सकी ।

21.3.4 अतिप्रतिभाशाली :

वसन्तसेना एक बुद्धिमती, कला कुशल तथा विदुषी नारी है । वह एक प्रतिभासम्पन्न गणिका है । विविध कलाओं का अच्छा ज्ञान है । वह राजमार्ग पर विट के कथन के गूढ अर्थ को समझ लेती है और आभ्षण उतार लेती है । चारुदत्त के पास गहने धरोहर रखने के लिये भो वह अकाट्य तर्क देती है – पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु (पृ0121) जब चारुदत्त के पास अभिसार के लिए जाती है तो मार्ग में विट द्वारा मेघों का वर्णन सुनकर स्वयं भो उसी स्तर का वर्णन करने लगती है चारुदत्त से अकेले मिलने के लिये बडी चतुरता से छत्रधारिणी को विट के पास ही रहने देती है जिससे विट कहता है ''अनेनोपायेन निपुणं प्रेषितोऽस्मि''। (पृ0 345) इसके अतिरिक्त रदनिका के साथ लाये गये रोहसेन की मार्मिक बातें सुनकर तत्काल उनका आशय समझ कर अपने गहने उतार कर दे देती है ।

पंचम अंक विट ने उसकी कलाभिज्ञता स्पष्ट रूप से कही है – सकलकलाभिज्ञायाः न किंचिदपि उपदेष्टव्यमस्ति । (पृ0 342) वसन्तसेना को संस्कृत भाषा का भो ज्ञान है इसका प्रमाण चतुर्थ अंक में विदूषक के साथ वार्तालाप के अवसर पर मिलता है ।

वसन्तसेना चित्ररचना में भो निपुण है । वह चारुदत्त का चित्र बनाकर मदनिका को दिखाती है।

21.3.5 चारुदत्त से अटूट प्रेम :

वसन्तसेना चारुदत्त को सच्चे हृदय से प्रेम करती है । कामदेवायतन में जब वह चारुदत्त का दर्शन करती है, तभो उसके हृदय में अनुराग उत्पन्न हो जाता है । वह जानती है

चारुदत्त दरिद्र है तो भो वह उससे प्रेम करती है । उसका प्रेम धन के लिये नहीं अपितु प्रशंसनीय प्रेम है – ''दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवंचनीया भवति।'' (पृ0 133) चारुदत्त से वह कुछ नहीं चाहती अपितु उसके लिये अपना सर्वस्व त्याग करने को उद्यत है । पुष्पकरण्डक उद्यान में जब शकार उसे मारने के लिये उद्यत हो जाता है तो वह चारुदत्त का नाम लेकर मरने को तैयार हो जाती है किन्तु शकार को स्वीकार नहीं करती।

उत्कट प्रेम के कारण उसे चारुदत्त की प्रत्येक वस्तु से प्रेम हो जाता है । यही कारण है कि कणपूरक को प्राप्त दुपट्टा जब उसे मिलता है और उसमें चारुदत्त का नाम पढ़ती है तो आनन्द से उसे ओढ लेती है । वह चारुदत्त से प्रेम में गुणों को कारण मानती हुई कहती है – गुणः खल्वनुरागस्य कारणम् न पुनर्बलात्कारः । (पृ0 80) इसीलिए अतिसम्पन्न राजश्यालक द्वारा प्रेषित विपुल धनराशि को ठुकरा कर निर्धन होते हुए भो चारुदत्त से विशु) प्रेम करती है ।

आभ्षण न्यास, दुर्दिन में अभिसरण, पुष्पकरण्डक गमन आदि करती हुई वह मरणासन्न हो जाती है । किन्तु सचेत होने पर चारुदत्त को बचाने के लिये वध्यस्थल पर पहुंच जाती है तथा प्रेम के आवेग में उसके हृदय पर गिर जाती है । अंत में 'कुलवधू' पद को प्राप्त कर उसका मनोरथ पूर्ण होता है । आर्ये वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति । (पृ0 647)

21.3.6 धूता के प्रति आदरभाव –

वसन्तसेना का धूता के प्रति हमेशा सम्मान का भाव रहा है । जब सर्वप्रथम वह चारुदत्त के घर पहुंचती है और उन लोगों के द्वारा पहचान ली जाती है तब वह अपराध समझकर क्षमायाचना करने लगती है – एतेनानुचितभ्मिकारोहणेनापरा)ऽयं शीर्षेण प्रणम्य प्रसादयामि । (पृ0 121) चारुदत्त गहनों के चोरी हो जाने पर अपनी पत्नी धूता की रत्नावली वसन्तसेना को लौटाता है तो वसन्तसेना उसी रत्नावली को धूता के पास भजती हुई कहती है – चेटि ! गृहाणैतां रत्नावलीं मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा समर्पय । वक्तव्यं च अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिजिता दासी तदा युष्माकमपि । (पृ0 369) इससे ध्ता के प्रति उसकी अतिशय सम्मान भावना प्रकट होती है । वसन्तसेना अपनी सामाजिक मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखती है । वह यह जानती है कि वह एक गणिका है और चारुदत्त के अन्तःपुर में प्रविष्ट होने की अधिकार नहीं रखती – मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य । (पृ0 36)

21.3.7 रोहसेन के प्रति वात्सल्य

वसन्तसेना के विषय में यह एक अद्भत विशेषता है कि प्रथम 'जननी' सुख का अनुभव करती है और बाद में पत्नी । वेश्या होने पर भो उसका हृदय वात्सल्य से ओत–प्रोत है । रदनिका जब रोहसेन को गोद में लेकर वसन्तसेना के पास आती है तो वह रदनिका से पूछती है – रदनिके ! स्वागतं ते, कस्य पुनरयं दारकः अनल–कृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति माम् ।। (पृ0 371)

जब रदनिका उसे चारुदत्त का पुत्र बतलाती है तो उसका स्नेह उमड़ पड़ता है वह हाथ फैलाकर कहती है – एहि मे पुत्रक ! आलिङ्ग । ऐसा कहकर उसे गोद मे उठा लेती है । बालक की भोली–भाली किन्तु मार्मिक बातें सुनकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है और कहती है – जात ! मुग्धेन मुखेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि । वह तत्काल बालक की इच्छापूर्ति हेतु स्वयं अनलंकृत हो जाती है और कहती है – एषेदानीं ते जननी संवृत्ता । तदगृहणैतमलंकारकं सौवर्णशकटिकं कारस्य । (पृ0373) प्रस्तुत कथन वसन्तसेना के सच्चे मातृ हृदय के द्योतक है।

नाटक के अन्त में वसन्तसेना का चरित्र नितान्त निर्मल किरणों से प्रखर हो उठा है । उसकी समस्त विशेषताएँ – चपलता, विनम्रता, विदग्धता शीलता, उदारता इत्यादि परस्पर रसमय हो गई हैं । कहना न होगा कि गणिका होते हुए भो वसन्तसेना का व्यवहार तथा प्रेम कुलनारी के सदृश है – अवेशसदृशप्रणयोपचाराम् (पृ0302) उसने अपने अनन्य प्रेम, उदात्त चरित्र, अपूर्व त्याग आदि गुणों से गणिका होने की कालिमा को प्रक्षालित करके एक साध्वी नारी के पद को अलङ्.कृत किया है और वह नवजीवन का देवदूत बन गई है ।

21.4 शकार का चरित्र चित्रण

शकार मृच्छकटिककार की विचित्र कल्पना है । समूचे संस्कृत साहित्य में ऐसे चरित्र का मिलना प्रायः असंभव है । वह इस प्रकरण का प्रतिनायक है । दशरूपककार के अनुसार प्रतिनायक लोभो, धीरोद्धत, जड़ प्रकृति वाला पापी और व्यसनी होता है । शकार भो मूर्खता, प्रवचना, पाप क्रूरता और कायरता आदि दुर्गुणों से पूर्ण है ।

21.4.1 संस्थानक अथवा शकार –

शकार राजा पालक की रखैल स्त्री का भाई है । राजश्यालक और संस्थानक भो है । वह शकारी प्राकृत बोलता है । जिसमें सकार के स्थान पर शकार बोला जाता है । जैसे वसन्तसेना को वशन्तसेना कहता है। संभवतः इसी हेतु इसका उपनाम शकार पड़ा । प्रथम अंक में विट एवं 'काणेलीमातः' कहकर बुलाता है । विदूषक भो 'काणेलीपुत्र' कुट्टनीसुत' इत्यादि गर्हित शब्दों से ही बुलाता है । जिसका तात्पर्य भो (रखेली) अविवाहित स्त्री का पुत्र होना है।

21.4.2 अभिमानी तथा जडप्रकृतिवाला

शकार बहुत अभिमानी है । उसे राजा का साला होने का अभिमान है । इसी से वह मनमानी करता है । अपने आपको देव पुरुष या वासुदेव समझता है । वह न्यायधीशों को निकलवाने की धमकी देकर उनसे मनमाना न्याय कराना चाहता है । उनके कथन अज्ञान तथा मूर्खता से भरे पड़े हैं । जैसे – द्रोणपुत्रो जटायुः । न मृता रज्जब इत्यादि । वह मूर्खता पूर्ण भाषणों में रामायण महाभारत आदि महाकाव्यों तथा कथा पुराणों के पात्रों का नियोजना करता है किन्तु उसकी पात्र–नियोजना का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है । जैसे – किं द्रौपदीव पलायसे रामभोता । (प्र0अं. 25) अथवा मम वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती । (प्र0अं.21)

इस तरह के अन्य उदाहरण भो इस प्रकरण में देखने को मिलते है । वसन्तसेना के लिए उसने दस उपनाम रखे है । ऐसा लगता है जैसे वह इन नामों में इन्द्रजाली प्रभाव का अधिष्ठान मानता है । साथ ही वह शब्द सम्बन्धी अपनी विद्वता भो प्रदर्शित करना चाहता है ।

21.4.3 कायर तथा दुराग्रही –

शकार अस्थिर स्वभाव वाला है । उसके विचार क्षण–क्षण में बदलते रहते है । जीर्णोद्यान में जब स्थावरक गाड़ी लेकर पहुंचता है तब वह उसमें वसन्तसेना को देख कर भयभोत होकर उठता है – मृतोऽसि मृतोऽसि। प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवसति । (पृ0 292) नाटक के अंत में जब वह वसन्तसेना को जीवित देखता है तो मृत्यु के भय से आर्य चारुदत्त की शरण में आने से भो नहीं झिझकता तथा कहता है

''भो अशरणशरण ! परित्रायस्व ।'' इसी तरह बड़े कातरभाव से वसन्तसेना से प्रार्थना करता है – ''गभदासीपुत्रि ! प्रसीद ! प्रसीद ! न पुनर्मारिष्यामि । तत् परित्रायस्व ।'' वस्तुतः वह कायर ही है शूरता और वीरता का तो उसने नकली बाना पहन रखा है ।

शकार के दुराग्रही होने के कारण उसके साथी विट और चेट को हमेशा शंका रहती है कि न जाने वह क्षण भर में क्या कर बैठे । अष्टम अंक में पहले तो वह विट को गाड़ी में बैठने की कह देता है फिर उसका अपमान करने लगता है । इसी प्रकार स्थावरक (चेट) को दीवार पर से गाड़ी लाने का आदेश दे देता है । प्रथम अंक में विट से कहता है कि मैं वसन्तसेना को लिए बिना नहीं चलूंगा । ये सभो उदाहरण उसके दुराग्रही स्वभाव को प्रमाणित करते है ।

21.4.4 क्रूर एवं निर्दयी :

शकार क्रूर तथा निर्दयी होने के साथ पापी है । तथा पापपूर्ण योजना बनाने में निपुण है । विट और चेट को कपटपूर्वक हटाकर वसन्तसेना का गला दबा देता है । और जब विट इस कुकृत्य की भर्त्सना करता है तो उस पर ही हत्या का आरोप लगा देता है । चेट को बांधकर एक स्थान पर डाल देता है तथा स्वयं चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का अभियोग चलाता है । जब चेट उसके पापों का खुलासा करता है तो उस पर चोरी का आरोप बडी चतुरता से लगा देता है । चाण्डालों से भो पुत्र सहित चारुदत्त को मारने का

आदेश दे देता है – ''सपुत्रमेवैतं मारय।'' अपने षडयन्त्र को सफल होते देख वह अति हर्षित होता है और अपने सामने चारुदत्त का वध देखना चाहता है – ''तत् प्रेक्षिष्ये, शत्रुविनाशो नाम मम महान् हृदयस्य परितोषो भवति।'' (पृ0 601)

21.4.5 कामुक :

शकार क्रूर होने के साथ–साथ कामवासना से युक्त है । जिस वसन्तसेना को वेश्या समझ एक तच्छप्राणी समझता है यद्यपि उस वसन्तसेना के मन में उसके लिए कोई स्थान नहीं हैं किन्तु शकार येने–केन प्रकारेण उसे अपनी बनाना चाहता है । वह किसी भो कीमत पर कामाग्नि को शान्त करना चाहता है । उसका कथन है –

किं यासि धावसि पलायसे प्रस्खलन्ती
वासु प्रसीद न मरिष्यसि तिष्ठ तावत् ।
कामेन दह्यते खलु मे हृदयं तपस्वि,
अङ्गाराशिपतितमिव मांसखण्डम् ।। (प्र0अं.18)

प्रथम अंक से प्रारम्भ होकर अन्तिम अंक तक उसकी कामवासना ही प्रकट होती है । वह साम, दाम, दण्ड, भद इन चारों नीतियों से वसन्तसेना को वश में करना चाहता है । और जब वह अपने प्रयासों में असफल हो जाता है तो उसे मारने से भो नहीं चूकता है ।

शकार के चरित्र पर विल्सन महोदय की टिप्पणी भो दृष्टव्य है –

'तथापि नाटक की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि राजा का साला संस्थानक है । इतना पूर्णतया घृणास्पद चरित्र शायद साहित्य में कभो अंकित नहीं किया गया है । उसके दुर्गुण भयकर है, वह नितान्त निर्मम एवं दुश्चेष्ट है, तो भो इतना हास्यास्पद है कि हमारा क्रोध बेकार बर्बाद होता है और जब उसके अपराधों के उचित दण्ड की घड़ी आती है तब चारुदत्त के साथ हम भो यह कहने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं इसे मुक्त करो और छोड दो ।

(विल्सन–दी थियेटर ऑफ दी हिन्दूज) पृ0 57

डॉ0 भाट ने भो शकार को शैक्सपियर के दानव से तुलना की है जिस पर नियन्त्रण रखने वाला मालिक मौजूद नहीं है । अथवा 'पंचतन्त्र' के पृष्ठों में से शायद एक धूर्त लोमड़ी शकार के स्वरूप में जीवित प्रकट हो गयी है ।

शकार के चरित्र में प्राय सभो दुर्गुणों का पुज दृष्टिगोचर होता है । केवल स्त्री लम्पट, मूर्ख और धूर्त ही नहीं अपितु घमण्डी, कायरता, भोरुता, निर्लज्जता, स्वादलोलुपता, कुटिलता आदि अवगुणों की प्रतिमूर्ति है । प्रस्तुत प्रकरण में वह मानव के रूप में दानव विद्यमान है । ग्रंथ में प्रतिनायक के रूप में उसका यथार्थ चित्रण किया गया है ।

21.5 विदूषक का चरित्र–चित्रण

मृच्छकटिकम् का विदूषक मैत्रेय है । 'दशरूपक' के अनुसार नायक का वह सहायक, जो अपने आकार प्रकार तथा कथन आदि से हंसी उत्पन्न करता है विदूषक कहलाता है 'हास्यकृच्च विदूषकः । (दश0 2, 9)

मृच्छकटिक का विदूषक इससे कुछ भिन्न प्रतीत होता है । यद्यपि इसमें भो यह गुण हैं इसमें सन्देह नहीं तथापि उसकी अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं का भो चित्रण है ।

21.5.1 व्यक्तित्व

मैत्रेय का जन्म निकृष्ट ब्राह्मण कुल का है । ब्राह्मण होने के कारण वह वैदिक मंत्रों तथा यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं का जानकार है । द्वितीय अंक में रात मे पैर धोने के प्रसंग में वह अपना परिचय देता है – 'यथा नागानां मध्ये डुण्डुभः, तथा सर्वब्राह्मणानां मध्येऽहंब्राह्मणः । (पृ0 191)

21.5.2 चारुदत्त से अपार प्रेम :–

विदूषक एक सच्चा मित्र है । वह मित्रता की कसौटी पर सदैव खरा रहता है । इसने कभो कोई ऐसा व्यवहार नहीं किया जिससे उसकी मित्रता पर कोई दोष लगें । सुख और दुःख दोनों अवसरों पर साथ रहना तथा मैत्री निभाना उसके जीवन की एक अनुपम विशेषता है । चारुदत्त के दरिद्र हो जाने पर भो वह उसके साथ उसी निष्ठा व प्रेम से रहता है जैसा कि वह उसके वैभव युक्त दिनों में रहता था । परिस्थितियों से ऊबकर वह चारुदत्त की

आज्ञाओं का उल्लंघन करने के लिये अनुप्राणित अवश्य होता है परन्तु जब यह देखता है कि यह चारुदत्त की आन्तरिक इच्छा है कि वह अपनी भावनाओं को दबाकर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है ।

सच्चे मित्र की तरह उसे आश्वासन देता है – भो वयस्य तमवार्थकल्यवर्तं स्मृत्वा अलं संतापितेन।

(पृ0 28) वह चारुदत्त को किसी प्रकार भो कष्ट नहीं पहुंचने देना चाहता इसी कारण रदनिका से अपने अपमान की बात चारुदत्त से कहने को मना कर देता है ।

प्रथम अंक में जब सबसे पहले चारुदत्त विदूषक को देखता है तो प्रसन्न होकर कहता है – अये सर्वकालमित्रं मैत्रेयः प्राप्तः । (पृ041) गहनों के चोरी के अवसर पर भो जब चारुदत्त अत्यधिक दुःखी हो जाता है तब धूता अपनी रत्नावली चारुदत्त के पास इसके हाथों से भिजवाती है । तब चारुदत्त कहता है – विभवानुगता भार्या सुख दुःखसुहृद् भवान् । (3.28) विदूषक जानता है कि वेश्या लालची तथा कुटिल होती है इस कारण वह वसन्तसेना को भो इसी दृष्टि से देखता है और सन्मित्र की तरह चारुदत्त से कहता है – निवर्त्यतामात्माऽस्माद् बहुप्रत्यवायाद् गणिकाप्रसङ्गात्। (पृ0 308)

चारुदत्त के प्रति उसका अगाध प्रेम है । जब उसे पता चलता है कि शकार ने चारुदत्त पर मिथ्या अभियोग लगाया है तो वह न्यायालय में शकार से लड़ बैठता है तथा चारुदत्त के मृत्युदण्ड की घोषणा पर स्वयं भो बिना चारुदत्त के जीवित नहीं रहना चाहता । 'भो वयस्य । एवं त्वया ज्ञातं त्वया विनाऽहं प्राणान् धारयिष्यामि? (पृ0 607)

21.5.3 भीरु तथा क्रोधी प्रकृति –

अन्य विदूषकों की भांति मैत्रेय भो भोरु प्रकृति का है । भोरु प्रकृति के कारण अंधेरे में दीप चढ़ाने के लिए अकेले घर से बाहर नहीं जाता है । इस कार्य के लिये रदनिका को साथ लेकर जाता है । वसन्तसेना को रात्रि में घर पहुंचाने के लिए भो इसलिए तैयार नहीं होता कि कहीं कुत्ते के समान बाहर मार न दिया जाये । तृतीय अंक में वसन्तसेना के स्वर्णाभ्षण के भाण्ड रखने से भो डरता है ।

भोरु प्रकृति के साथ–साथ विदूषक क्रोधी भो है । वह शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाता है । रदनिका के अपमान को देखकर वह शकार और विट को मारने को उद्यत हो जाता है – (सक्रोध दण्डकाष्ठमुद्यम्य) मा तावत् भो, स्वकेगेहे कुक्कुरोऽपि तावच्चण्डो भवति कि पुनरहं ब्राह्मणः । (पृ0 97) इसी तरह नवम अंक में वह न्यायालय में ही शकार पर क्रुद्ध हो जाता है ।

21.5.4 भोजनप्रिय –

संस्कृत के अन्य नाटकों की भांति मृच्छकटिकम् का विदूषक भोजनप्रिय व पेटू है । नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार यही जानकर उसे भोजन हेतु आमन्त्रित करता है । चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के भवन में नाना प्रकार के भोजनों को बनते देखकर विदूषक मन ही मन सोचता है – अपीदानीमिह वर्धित भङ्.क्ष्व इति पादोदकं लप्स्ये । (पृ0 282) इसी तरह जब वसन्तसेना बिना खिलाये पिलाये भज देती है तो वह कहता है इसने तो पानी को भो नहीं पूछा । वसन्तसेना की स्थूलकाय माता को देखकर उसके प्रति ईर्ष्या का कारण भोजन ही है । वह कहता है उसे वैसा ही मधुर और स्वादिष्ट भोजन, पेट भर मिलता, चाहे वह भो 'चौथिया' रोग से पीड़ित क्यों न हो जाए?

विदूषक के लिए हम कह सकते है कि वह एक सच्चा मित्र बुद्धिमान साथी और हर परिस्थिति में साथ निभाने वला सहयोगी दिखाई देता है । वह केवल हंसी या मजाक का पात्र नहीं है । मैत्रेय द्वारा न्यायालय में दिये गये भाषण पर टिप्पणी करते हुये डा0 जी0के0भाट ने लिखा है – मैत्रेय के इस उत्स्फूर्त भाषण में न्यायप्रियता, तर्कशुद्धता, विनय, भावनाप्रकष और करुणायुक्त क्रोध आदि अनेक बातों का अभ्तपूर्व मिलन हुआ है ।

21.6 शर्विलक की चारित्रिक विशेषताएँ

शूद्रक ने सभो पात्रों का चरित्र इस प्रकार चित्रित किया है कि उनकी व्यक्तिगत विशेषताऐं स्पष्ट झलकती है । शर्विलक प्रासंगिक कथावस्तु का नेता होने से हम उसे नाटक का अनु–नायक कह सकते हैं । वह जाति से ब्राह्मण है । इसके पूर्वज चारों वेदों के ज्ञाता

और दान न लेने वाले उत्कृष्ट ब्राह्मण थे । उसके चरित्र में एक क्रान्तिकारी और प्रेमी व्यक्ति का समन्वय हुआ है । क्रान्तिकारी के रूप में वह अत्याचारी राजा पालक की हत्या करता है तथा प्रेमी के रूप में मदनिका को दासता से मुक्त कराने के लिये चोरी करना भो बुरा नहीं समझता ।

शर्विलक बुद्धिमान है । चोरी करते समय जब सांप उसकी अंगुली को काट लेता है तब तत्काल अपने जनेऊ का उपयोग करता है और बांध कर विष का प्रभाव रोक लेता है – दष्टस्य कीटभजगैः परिवेष्टञ्च। (3.16)

पुराना दरवाजा खोलने पर आवाज न करें इसके लिए नहीं नीचे पानी छिड़क लेता है । घर में स्वयं घुसने से पहले एक पुतला को प्रवेश कराकर निरापद स्थिति जान लेता है । तब स्वयं प्रवेश करता है।

चोरी के उसके अपने कुछ सिद्धान्त है । वह बलपूर्वक चोरी करना ठीक नहीं मानता । जहाँ केवल स्त्री है, वहाँ चोरी करना या स्त्री पर प्रहार करना अच्छा नहीं समझता है । मदनिका के सामने स्वयं के चौरकार्य के बारे में कहता है – कार्याकायविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता । (4.6) चारुदत्त के यहाँ चोरी करने घुसा किन्तु उसकी दयनीय अवस्था को देखकर चोरी का विचार छोड देता है – अथवा न युक्तं तुल्यावस्थं कुलपुत्रजनं पीडयितुम् तद् गच्छामि । (पृ0209)

शर्विलक एक सच्चा मित्र है । मित्रता को उच्चकोटि का मानता है । नयी पत्नी मदनिका को घर ले जाते समय अपने मित्र आर्यक के बन्दी बनाये जाने की सूचना पाकर व्यथित हो जाता है । और आर्यक को छुड़ाने की योजना में चला जाता है । वह प्रणय और मित्रता में से मित्रता को प्रधानता देता है । वह चारुदत्त के प्राणों की रक्षा के साथ–साथ उसको पत्नी की भो पूरी चिन्ता रखता है ।

यद्यपि शर्विलक मदनिका पर आसक्त है, वह उससे प्रणय करना चाहता है तथा उसे मुक्त कराना चाहता है परन्तु अपनी प्रतिष्ठा की हानि उसे सहन नहीं । वस्तुतः यही एक ऐसा तत्त्व है जो उसे नितान्त विलासी एवं निष्क्रिय नहीं होने देता और वह राज्य क्रान्ति का सफल नेतृत्व करता है ।

इस प्रकार यद्यपि परिस्थितिवश चौर्य–कार्य करन पर भो वह अपने चरित्र के गौर व को नहीं भ्ल सका है । वह सच्चा मित्र है, सच्चा प्रणयी है, उपकार के प्रति कृतज्ञ है, वह प्रत्युपकार करने के लिये भो लालायित है । उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वेश्या दासिका से आसक्त होने के वाबजूद कौटुम्बिक एवं गार्हस्थिक मर्यादा के महत्त्व के प्रति सजग है । मदनिका को वधू रूप में प्राप्त कर लेने के वाद वसन्तसेना को भो उसी गौरव से विभ्षित कर देता है ।

21.7 धूता की चारित्रिक विशेषताएँ

धूता चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है । इस प्रकरण में वह पतिव्रता पत्नी की तरह उस भारतीय नारी की तरह दिखती है जो अपने अस्तित्व बोध के बिना ही निरपेक्ष रूप से परिवार के लिए अपनी बलि चढ़ा देती है । यद्यपि वह एक सामान्य रूपवाली ही प्रतीत होती है किन्तु इसमें गुणों की कमी नहों है ।

धूता के जीवन का लक्ष्य अपने पति की प्रसन्नता व उन्नति ही है । वह चारुदत्त की छाया की तरह उसके सुख–दुःख, मान–अपमान के विषय में हमेशा सावधान रहती है । वह अपनों की अपकीर्ति से डरती है, इसी हेतु बड़ी चतुराई से रत्नावली विदूषक को दे देती है । 'अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता .... तत् तस्य कृते प्रतीच्छ इमां रत्नमालिकाम् ।' (पृ0 226) चारुदत्त भो उसके इस गुण से अत्यधिक प्रभावित होने से वह स्वयं को दरिद्र नहीं समझता क्योंकि उसने धूता जैसी विभवानुगता सच्ची पतिव्रता पत्नी पाई है ।

धूता को आभ्षणों के प्रति ममता नहीं ह । वह अपनी पति को ही जीवन का सर्वस्व व सबसे बड़ा आभ्षण समझती है । सोने के आभ्षणों से उसे तनिक भो मोह नहीं है । यही कारण है कि जब वसन्तसेना रत्नावली को लौटाती है तो वह यह कहकर अस्वीकार कर

देती है कि – आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति । (पृ0 370) सपत्नी के रूप में धूता अत्यन्त उदार है । वह अपनी सपत्नी से ईर्ष्या रखने वाली नारी न होकर उससे प्रेम रखने वाली नारी है । तथा वसन्तसेना से प्रेम करने वाले अपने पति पर भो कोप नहीं करती । वह अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है । उसके वध की बात सुनकर चिता में कूदकर प्राण त्याग कर देना चाहती है तथा अपने प्रिय पुत्र की भो चिन्ता नहीं करती हैं, न पाप से डरती है वरं पापाचरणम् । न पुनरार्यपुत्रस्यामङ्गलाकणनम् ।। (पृ0 643)
यद्यपि वसन्तसेना की तुलना में धूता का चरित्र सम्बन्धी वैशिष्ट्य इस प्रकारण कम प्रकट हो पाया है। फिर भो स्पष्ट है कि उसका व्यक्तित्व वसन्तसेना से किसी भो तरह कम नहीं है । चरित्र–चित्रण शूद्रक की विशेषता है, उनकी नाट्य कला की प्रवणता के कारण धूता जैसा पात्र भो सजीव हो उठा है । इस ग्रंथ में धूता एक आदर्श सहनशील भारतीय नारी के रूप में चित्रित हुई है ।

21.8 पारिभाषिक शब्दावली

चारुदत्त	–	नायक, उज्जयिनी का एक नागरिक
वसन्तसेना	–	नायिका, गणिका
मैत्रेय	–	विदूषक, चारुदत्त का मित्र
शकार	–	प्रतिनायक, राजा पालक का श्यालक
धूता	–	चारुदत्त की पत्नी
शार्विलक	–	एक साहसी ब्राह्मण, मदनिका का प्रेमी

सांकेतिक शब्द –

अ0	–	अङ्क
प्र0	–	प्रथम
द्वि0	–	द्वितीय
दश0	–	दशरुपक
पृ0	–	पृष्ठ

तृतीय चतुर्थ आदि अंको का भी केवल प्रथम अक्षर लिया गया है ।

21.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 मृच्छकटिकम् का चारुदत्त किस प्रकार का नायक है ।
(क) धीरोदात्त (ख) धीरललित (ग) धीरप्रशान्त (घ) धीरोद्धत

प्र.2 ''भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।'' इस वाक्य से चारुदत्त की कौनसी विशेषता लक्षित होती है ।
(क) शरणागतरक्षक (ख) भाग्यवादी
(ग) आदर्श प्रेमी (घ) पुत्र स्नेही

प्र.3 वसन्तसेना, चारुदत्त पर क्यों आसक्त है –
(क) गुणों के कारण (ख) सौन्दर्य के कारण
(ग) धन के कारण (घ) आदर्श मित्र होने के कारण

प्र.4 'कुलवधू' की संज्ञा से विभूषित किया है –
(क) धूता को (ख) वसन्तसेना को
(ग) मदनिका को (घ) इनमें से कोई नहीं

प्र.5 संस्कृत साहित्य में एकमात्र चरित्र चित्रण प्रधान नाटक है –
(क) मृच्छकटिकम् (ख) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(ग) उत्तररामचरितम् (घ) स्वप्नवासवदत्तम्

प्र.6 नाटक में शकारी प्राकृत बोलने वाला पात्र है –
(क) चारुदत्त (ख) शर्विलक (ग) मैत्रेय (घ) शकार

प्र.7 शर्विलक किस पर आसक्त है –
(क) वसन्तसेना पर (ख) धूता पर
(ग) मदनिका पर (घ) इनमें से कोई नहीं

अभ्यास :–

प्र.1 चारुदत्त की चारित्रिक विशेषताऐं लिखिये ?

प्र.2 वसन्तसेना का चरित्र – चित्रण प्रस्तुत कीजिये ?

प्र.3 निम्नलिखित के चरित्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए –

(1) विदूषक ....

(2) शर्विलक ....

(3) धूता..

(4) शकार ....

बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 ग

प्र.2 ख

प्र.3 क

प्र.4 ख

प्र.5 क

प्र.6 घ

प्र.7 ग

अभ्यास

1. देखिए भाग 21.2
2. देखिए भाग 21.3
3. (1) देखिए 21.5
   (2) देखिए 21.6
   (3) देखिए 21.7
   (4) देखिए 21.4

21.10 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने मृच्छकटिकम् के प्रमुख पात्रों का परिचय साम्यक्तया प्राप्त किया है । प्रस्तुत इकाई में चारुदत्त, वसन्तसेना, शकार, विदूषक, धूता, शर्विलक जैसे प्रमुख पात्रों का उनकी विशेषताओं के आधार पर विवेचन किया है । साथ में नाटक से सम्बन्धित अंश लेकर उनकी विशेषतता को प्रमाणित भी किया गया है ।

संस्कृत साहित्य में मृच्छकटिकम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है । लोक कथानक पर आधारित होने के कारण इसकी लोकप्रियता प्राचीन काल से है । इस नाटक में समाज के सभी वर्गों के ब्राह्माण युवा को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपनी उदारता से अत्यन्त निर्धन हो चुहा है । किन्तु उसके स्वभाव में कार्पण्य नहीं है । उसके गुणों से प्रभावित होकर आसक्त होने वाली नवयौवना गणिका उससे कुलस्त्री के समान व्यवहार करती है । इस प्रकरण में चारुदत्त की पत्नी भी अपने व्यक्तित्व का अच्छा प्रदर्शन करती है । प्रतिनायक के रूप में शकार जैसे पात्रों की सर्जना भी शूद्रक की प्रखर प्रतिभा का प्रतिफलन है । वाग्वैदग्ध्य से हास्य उत्पन्न करने में मैत्रेय (विदूषक) का सर्वाधिक महत्त्व है । अनुनायक के रूप में नाटक में शर्विलक भी महत्त्वपूर्ण पात्र है । जिसके चरित्र में एक क्रांतिकारी और प्रेमी के व्यक्तित्व का समन्वय है । किन्तु नाटक मे चोर, जुआरी, धूर्त, राजसेवक, भिक्षु पुलिस, कमचारी गणिका आदि समस्त श्रेणियों के पात्रों का चित्रण है । तथापि इस इकाई में प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण उनकी विशिष्टताओं के आधार पर किया गया है ।

संस्कृत साहित्य में यह एकमात्र चरित्र प्रधान नाटक है । मृच्छकटिकम् के चरित्र–चित्रण की प्रमुख विशेषता है कि इसका प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर सामने आता है । केवल प्रतिनिधि पात्र बनकर नहीं । इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए प्रमुख पात्रों का चारित्रिक विवेचन किया गया है ।

21.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.

इकाई–22

मृच्छकटिकम् की प्रमुख सूक्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप महाकवि शूद्रक विरचित सुप्रसिद्ध प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' के अन्तर्गत आयी हुई सूक्तियों की व्याख्या का अध्ययन करेंगे।

22.1 प्रस्तावना

मृच्छकटिकम् प्रकरण में तत्कालीन सामाजिक दशा का विस्तृत वृतान्त है। इसमें मुख्य रूप में दरिद्र ब्राह्मण चारुदत्त व गणिका वसन्तसेना का पवित्र प्रेम वर्णित है। इस प्रकरण में स्थान–स्थान पर सुभाषित कथन हैं जो आज के समय में भो शिक्षा प्रदान करते हैं। इस इकाई में आप मृच्छकटिकम् की इन्हीं ''सूक्तियों'' (सुभाषित कथन) की हिन्दी भाषा में व्याख्या पढ़कर लाभान्वित होंगे।

22.2 प्रथम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. शून्यमपुत्रस्य गृहं चिर शून्यं नास्ति सन्मित्रम्।
   मूर्खस्यदिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य।।
2. अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।
3. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति च।
4. अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।
5. मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति।
6. रत्न रत्नेन संगच्छते।
7. न युक्तं परकलत्रदर्शनम्
8. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि नावच्चण्डो भवति।
9. पुरुषेषु न्यासानिक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु।
10. बहुदोषा हि शर्वरी

22.2.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

**1. शून्यमपुत्रस्य गृहं चिर शून्यं नास्ति सन्मित्रम्।
मूर्खस्यदिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य।।**

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब सूत्रधार मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण मे होने वाली घटनाओं को बताते हुए दरिद्रता की निन्दा करते हुए आगे घटित होने वाली चारुदत्त की दरिद्रता की ओर सकेत करते हुए कहा है कि समस्त वैभव के होते हुए भो यदि गृह प्रागण मे शिशुलीला करने वाला पुत्र नही है वह घर वास्तव मे शून्य (सूना) ही होता है यदि किसी का कोई अच्छा मित्र नही है उसका चिरकाल शून्य ही है क्योकि सहायक (मित्र)न होने के कारण उसके कार्यों मे बाधा पड़ती है। कोई भो अभिमत कार्य नहीं हो पाता। इसी भांति संसार में सब कुछ होते हुए भो मूर्ख उसका उपयोग नहीं कर पाता है। अतः उसके लिए सभो ओर शून्यता ही रहती है। परन्तु दरिद्र व्यक्ति के लिए तो समस्त संसार ही शून्य अर्थात नही के सदृश है क्योंकि न तो कोई उसका साथ देता है, न बात सुनता है, न करता है, न कुछ देता है। अतएव दरिद्र होना तो महाअभिशाप के समान है।

2. अल्पक्लेशं मरणं, दारिद्र्यमन्तकं दुःखम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब चारुदत्त अपनी वर्तमान दरिद्रता को सोच कर मरणतुल्य कष्ट का अनुभव करते हुए कहता है कि दरिद्रता अथवा मृत्यु में से मुझे मरना ही अच्छा लगता है क्योंकि मरना अल्प समय कष्ट देने वाला होता है परन्तु दरिद्रता तो ऐसा कष्ट है जो कभो भो समाप्त नहीं होता– 'अल्पक्लेशं मरणं दारिद्रयमन्तकं दुःखम्।''

उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता है। पूर्व में सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरान्त निर्धनता का कष्ट तो मृत्यु से भो निकृष्टतर है क्योंकि मरते समय होने वाला कष्ट तो अन्तिम कष्ट होता है परन्तु दरिद्रता के कारण तो जीवन भर कष्ट उठाना पड़ता है।

3. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब चारुदत्त अपनी दरिद्रता के विषय में सोच कर विदूषक से कहता है कि धनहीन होने के कारण अतिथि लोग मेरे घर को छोड़ देते हैं तथा अन्यत्र चले जाते हैं। ये बात मुझे अत्यधिक कष्ट दे रही है। विदूषक उसे

समझाते हुए कह रहा है ये धन तो उन्हीं के पास सुरक्षित रहता है जहाँ इसका उपभोग नहीं होता है अतः आप दुखी मत होइए। ऐसा सुनकर पुनः चारुदत्त कहता है मेरा धन विनष्ट हो गया है यह चिन्ता मुझे नहीं सता रही है क्योंकि धन तो भाग्यक्रम से ही प्राप्त होते हैं और चले भो जाते हैं– भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति च।

4. अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त धनहानि होने के कारण होने वाली हानियों का वर्णन करते हुए कहता है कि दरिद्रता के ही कारण व्यक्ति लज्जा को प्राप्त करता है अर्थात् प्रत्येक स्थान पर लज्जित होता है, लज्जित होने के कारण वह तेज से रहित (निस्तेज) जो जाता है, तेजहीन होने से वह अपमानित होकर ग्लानि को प्राप्त करता है, ग्लानि के कारण व्यक्ति शोक को प्राप्त होता है, शोकयुक्त व्यक्ति का बुद्धि द्वारा त्याग कर दिया जाता है। बुद्धिहीन (विवेकरहित) व्यक्ति विनाश को प्राप्त करता है। अतः सत्य ही है कि– अहो निधनता सर्वापदामास्पदम्, अहोः निर्धनता समस्त आपत्तियों का मूल कारण है।

5. मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब वसन्तसेना का पीछा करते हुए विट, चेट और शकार का प्रवेश होता है। वसन्तसेना भागती है, ये तीनों उसका पीछा करते हैं। तेज चलने के कारण वह अपने परिजनों से आगे निकल जाती है। उसको अकेला पाकर शकार उससे प्रेम प्रकट करता है, विट व चेट भो उसे समझाते हैं जब वह इनका कहना नहीं मानती है तो शकार क्रोध में आकर कहता है कि मेरी तलवार तेजधार वाली है, तुम्हारा सिर भो मेरी ओर झुका हुआ है, मैं तुम्हारा सिर काट डालूंगा। तुम्हारे भागने से तुम्हें कोई लाभ नहीं मिल सकता है क्योंकि जो मरने वाला होता है। वह निश्चित रूप से जीवित नहीं रहता है– '' मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति।''

सत्य ही कहा गया है मृत्यु जब साक्षात् उपस्थित हो तो जीवन असम्भव हो जाता है। (व्यक्ति मर जाता है)

6. रत्न रत्नेन संगच्छते

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब शकार वसन्तसेना का पीछा करते हुए वसन्तसेना को अकेला पाकर उसे नाना प्रकार का प्रलोभन देते हुए उससे प्रेम करने के लिए विवश करता है, इसके बाद जब वह उसका कहना नहीं मानती है तो गर्वोक्ति द्वारा उसे डराता है, उसे मारने तक की धमकी दे देता है। शकार का साथी विट भो उसे समझाता है कि तुम तो गणिका हो तुम्हें तो सभो लोगों कीसेवा करनी चाहिए। इसके उत्तर में वसन्तसेना कहती है कि गुण के कारण ही प्रेम होता है, बल का उपयोग करने से प्रेम नहीं होता। इसके पश्चात् अपनी कुटिल चाल चलते हुए कहता है कि विट! ये तो दरिद्र चारुदत्त को ही चाहती है। यहाँ से बायी ओर ही उसका घर है कोई ऐसा उपाय करो जिससे वह मेरे और तुम्हारे हाथ से निकल न जाए। विट मन में सोचता है कि शकार वही बात कह रहा है जो नहीं कहनी चाहिए। अन्यथा यह कथन भो ठीक ही प्रतीत होता है कि– ''रत्नं रत्नेन संगच्छते'' अर्थात् रत्न रत्न से ही प्राप्त होता है। भाव यह है कि वसन्तसेना का चारुदत्त से प्रेम उसके (चारुदत्त) गुणों के कारण ही है।

7. न युक्तं परकलत्रदर्शनम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब वसन्तसेना का पीछा करते हुए कहता है कि तुम मेरे साथ रमण करो। वसन्त सेना जब मना करता है तब वह उसे मारने तक की धमकी दे डालता है। शकार की बातों से अत्यधिक भयभोत होकर वसन्तसेना इधर–उधर भागती है। मार्ग में चारुदत्त का घर दिखता है तो वह उसमें प्रविष्ट हो जाती है। चारुदत्त उसे रदनिका समझ लेता है तथा अपने पुत्र के सो जाने पर उसके लिए (पुत्र के लिए) रदनिका को अपना उत्तरीय दे देता है। फिर वह विदूषक से पूछता है यह अन्य

कौन है जिसे मैंने रदनिका समझकर वस्त्र से अपवित्र कर दिया क्योंकि पराई स्त्री को देखना अनुचित है– ''न युक्तं परकलत्रदर्शनम्''

सत्य ही कहा गय है क्योंकि चारुदत्त एक सुशील, सच्चरित्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकरण का नायक है। इस दृष्टि से उसका परस्त्री को देखना उचित नहीं है।

8. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डोभवति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त जप समाप्त करके विदूषक से कहता है कि मातृदोषियों को बलि प्रदान करो। विदूषक कहता है कि मैं नहीं जाउंगा। एसा सुनकर चारुदत्त दुखी हो जाता है। तब विदूषक रदनिका (चारुदत्त की सेविका) के साथ जाने के लिए तैयार हो जाता है। विदूषक जैसे ही द्वार खोलता है तब शकार से भयभोत होकर घर के बाहर खड़ी हुई वसन्तसेना अपने आंचल से दीप बुझा देती है। विदूषक रदनिका से कहता है कि तुम चलों, मैं स्वयं दीप जलाकर आता हूँ। अवसर का लाभ उठाकर वसन्तसेना भोतर आ जाती है। ढूंढते हुए शकारादि वहाँ पहुंचते हैं तथा अंधेरे में खड़ी रदनिका को ही वसन्तसेना समझकर उसके बाल पकड़ लेते हैं। रदनिका इसका प्रतिवाद करती है। विदूषक जब वह सब देखता है तो अपमान का बदला लेने हेतु डण्डा हाथ में लेकर कहता हे कि– स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डोभवति'' अर्थात् अपने घर में तो कुत्ता भो बहादुर बनजाता है।

9. पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ लेता है और पुत्र रोहसेन को भोतर ले जाने के लिए उससे कहता है। वह पुत्र को ठंड से बचाने के लिए उत्तरीय देता है। उसकी पुष्पगंध को सूंघकर वसन्तसेना प्रसन्न हो जाती है। वह चुपचाप खड़ी रहती है। अपने आदेश का पालन न होते देखकर चारुदत्त पुनः अपनी निर्धनता के लिए दुखी होने लगता है। इतने में विदूषक और रदनिका वहाँ आते हैं। तब चारुदत्त को ज्ञात होता है जिसे वह रदनिका समझता है वह तो वसन्तसेना है। वसन्तसेना चारुदत्त से कहती है कि आप मेरे आभ्षण धरोहर के रूप में रख लीजिए क्योंकि इनके ही कारण शकार व उसके साथ मेरा पीछा कर रहे हैं। ऐसा सुनकर चारुदत्त कहता है कि मेरा घर धरोहर रखने के योग्य नहीं है। यह वसन्त सेना कहती है कि– ''पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु''

अर्थात् धरोहर अधिकारी (उचित) पुरुषों के पास रखी जाती है न कि घरों में। सत्य ही कहा है क्योंकि यदि कोई अपनी धरोहर कहीं रखना चाहता है तो वह इस बात पर ही ध्यान रखेगा कि वह व्यक्ति (जिसके घर पर वह धरोहर रख रहा है) विश्वसनीय है अथवा नहीं।

10. बहुदोषा हि शर्वरी

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन ह जब शकार वसन्तसेना का पीछा करता है वसन्तसेना उसके डर से भागती हुई चारुदत्त के घर में प्रविष्ट हो जाती है। वह चारुदत्त के समीप अपने आभ्षण धरोहर के रूप में रखना चाहती है क्योंकि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि शकार सम्भवतः आभ्षणों के कारण ही उसका पीछा कर रहा ह। जब वह आभ्षणों को चारुदत्त के समीप धरोहर के रूप में रखवा देती है तब रात्रि का समय होने के कारण चारुदत्त व विदूषक उसे उसके घर तक छोड़ने जाते हैं वहाँ से जब लौटते हैं तब रात्रि के अंधेरे को देखकर चारुदत्त कहता है राजमार्ग में आने जाने वाले भो अब नहीं जा आ रहे हैं, राजपुरुष सिपाही) गश्त लगा रहे हैं। वसन्त सेना के आभ्षणों (जो कि चारुदत्त के घर में न्यास रूप में रखे हैं) को भो वंचना (चोरी रूपी ठगाई) से बचाना है क्योंकि रात को अनेक दोषों से परिपूर्ण होती है– 'बहुदोषा हि शर्वरी'' उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता ह क्योंकि रात में ही अनेक अपराध होते हैं।

22.3 द्वितीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. सुमेरु शिखर – पतनसन्निभ द्यूतम्।
2. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।
3. सत्कारधनः, खलु सज्जनः

22.3.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. सुमेरुशिखर – पतनसन्निमं द्यूतम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब संवाहक नामक जुआरी जुए में हार कर भागने लगता है अन्य जुआरी उसका पीछा करते हैं। तब वह एक मन्दिर की मूर्ति के पीछे छिप जाता है। जब संवाहक को अन्य जुआरी नहीं ढूंढ पाते तब थककर कह कहते हैं कि चलो हम दोनों जुआ खेलत हैं। उन दोनों के जुआ खेतले समय कौडियों की ध्वनि से संवाहक को भो जुआ खेलने की इच्छा होती है। वह मन में कहता है कि मेरी स्थिति तो बहुत ही दयनीय है जुए के कारण मैं अत्यधिक कर्जदार हो गया हूँ। यद्यपि कोयल की मधुर ध्वनि के समान कौड़ियों की खनखनाहट मेरे मन को आकृष्ट कर रही है, तथापि मैं अब जुआ नहीं खेलूंगा क्योंकि मुझे ज्ञात है कि कर्जदार होने के कारण मेरी स्थिति उस व्यक्ति के समान है जो सुमेरु पर्वत की चोटी पर चढ़ तो गया परन्तु बाद में गिर जाता है– 'सुमेरु शिखर–पतन सन्निमं द्यूतम्'।

2. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब कजदार जुआरी संवाहक भागते हुए वसन्तसेना के भवन में पहुंचता है। वहाँ पहुंचकर बताता है कि वह पाटलिपुत्र के सम्पन्न गृहस्थ का पुत्र हूँ। उजयिनी की प्रशंसा सुनकर यहाँ आ गया। यह शरीर की मालिश करने की कला का जानकारी है इसीलिए कुछ दिन उसने चारुदत्त की सेवा की जब अत्यधिक दानादि देने के कारण चारुदत्त निर्धन हो गए वहाँ कार्य छोड़ना पड़ा। इस बात पर वसन्तसेना कहती है कि सद्गुणों एवं धन का एक ही व्यक्ति में मिलना कठिन है। धन तो उसी के समीप रहता है जो कृपण हो अतः सत्य ही कहा गया है कि 'अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति' अर्थात् जिनका पानी पीने योग्य नहीं होता है उन्हीं तालाबों में अधिक पानी रहता है।

3. सत्कारधनः खलु सज्जनः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब वसन्तसेना को यह ज्ञात होता है कि संवाहक चारुदत्त का सेवक है, तब वह उसे अपने घर में शरण दे देती है। इसके उपरान्त चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा करते हुए संवाहक कहता हे चारुदत्त वास्तव में धनी है क्योंकि वे तो सदैव दूसरों का सत्कार करते हैं सज्जव व्यक्ति यही धन है– ''सत्कारधनः खलु सज्जनः''

कहने का तात्पर्य यह है कि सज्जन व्यक्ति की धनवत्ता लक्ष्मी से नहीं होती है अपितु दूसरों का सत्कार करने से होती है। क्योंकि सभो का धन तो नष्ट हो जाता है परन्तु सज्जनों की सज्जनता के कारण दूसरों का सम्मान करना अविनाशी धन है। अतः चारुदत्त निर्धन होते हुए भो धनी है।

22.4 तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामादारुणः
2. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता
3. वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम्

22.4.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामदारुणः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त का सेवक वर्धमानक यह बता रहा है कि सज्जनों की सेवा सुखदायक है परन्तु दुष्ट की सेवा करना दुष्कर है। चारुदत्त जो कि दानादि देने के कारण अत्यधिक निर्धन हो गया है परन्तु वह सज्जन है तथा वह सेवकों के प्रति अत्यधिक दयालु है। अतः उसकी सेवा करना श्रेष्ठ है परन्तु धन के गर्व से उद्धत, अन्त में कष्टदायक शकार जैसे दुष्ट स्वामी की सेवा करना अत्यधिक दुःख प्रदान करता है। क्योंकि ऐसे स्वामी को प्रसन्न करना भो अतीक कष्टकारी है।

अतः उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता है– 'पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खल परिणामदारुणः।'

2. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चौर्यकला में निपुण शर्विलक सेंध काटकर चारुदत्त के घर में प्रविष्ट होता है, उस समय विदूषक चारुदत्त के घर में रखे हुए वसन्तसेना के आभूषणों की सुरक्षा की चिंता में परेशान है वह स्वप्न में बड़बडाता है कि हे चारुदत्त, यह स्वर्ण भाण्ड (पात्र) तुम सम्भालो। उस समय शर्विलक उसे मारना चाहता है पर स्त्री समझ कर छोड़ देता है। रदनिका शोर मचाती है, जिसे सुनकर विदूषक और चारुदत्त जग जाते है।। विदूषक से चारुदत्त को पता चलता है कि उसने (विदूषक ने) चौर शर्विलक को चारुदत्त समझकर स्वर्णभाण्ड दे दिया। चारुदत्त को इस बात का सन्तोष है कि चोर परिश्रम करके उसके घर में घुसा तथा खाली हाथ नहीं गया। जब विदूषत उसे स्मरण करवाता है कि वह स्वर्णभाण्ड तो वसन्तसेना की धरोहर है तब चारुदत्त दुखी व चिंतित होकर मूर्च्छित हो जाता है। जैसे ही उसे होश आता है तो सोचता है कि घटना की सत्यता पर कौन विश्वास करेगा, सभो मुझ पर सन्देह करेंगे। क्योंकि इस संसार में प्रतापशून्य निर्धनता सन्देह करने योग्य होती है– ''शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता'। उपर्युक्त कथन सर्वथा सत्य है क्योंकि दरिद्र पर सभो लोक शंका करते हैं।

3. वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब अर्द्ध रात्रि व्यतीत हो चुकी है तथा चारुदत्त विदूषक के साथ संगीत का आनन्द लेने हेतु नगर में गए हुए हैं वहाँ रेमिल द्वारा गाए गए मधुर गीत की एवं वोणा की मधुर ध्वनि की प्रशंसा करते हुए चारुदत्त कहता हे कि वीणा नामक रत्न ऐसा रत्न है जो समुद्र से नहीं निकला। वीणा तो विरह से व्याकुल प्रेमीजनों की सखी है क्योंकि यदि संकेत स्थल पर समय पर प्रेमी न आ पाए तो वह वीणा मनोरंजन करती है। इसी प्रकार प्रियतमा से वियोग हो जान पर सहानुभति भो दिखाती है। इस प्रकार वीणा नायक नायिका के मध्य प्रेम को बढ़ाने का आमोद–प्रमोद का साधन है। अतः उपर्युक्त कथन सत्य ही है कि ''वीणा हि नाम समुद्रोत्थितं रत्नम्''।

22.5 चतुर्थ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. स्वदोषैभवति हि शंकितो मनुष्यः
2. साहसे श्रीः प्रतिवसति
3. रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति
4. वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः
5. न चन्द्रादातपो भवति
6. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः

22.5.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. स्वदोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब वसन्तसेना क्रीतदासी मदनिका का प्रेमी शर्विलक उसे दासीत्व पद से मुक्त कराना चाहता है। अतः वह उसके लिए मुद्राओं की व्यवस्था करने के कारण चौरकम करता है। वह चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर स्वर्णभाण्ड चुरा लाता है। चोरी करने के उपरान्त वह राजा के सिपाहियों से छुपकर किसी प्रकार भागते हुए वसन्त सेना के घर की ओर आ रहा है तथा कहता है कि चोरी करने वाला सदैव स्वयं के प्रति सशंकित रहता है। इसीलिए शीघ्रता में डरते हुए भागते समय यदि कोई देखता है या छिपकर खड़े ए मेरे समीप आता है तो मेरा दोषी मन उन सभो को शंका की दृष्टि से सोचने लगता है अतः सत्य ही कहा गया है कि– ''स्वदोषैभवति हि शंकितो मनुष्यः'' अर्थात् मनुष्य सदैव अपने ही दोषों के कारण शंकित होता है।

2. साहसे श्रीः प्रतिवसति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब वसन्तसेना की क्रीतदासी मदनिका का प्रेमी उसको दासीत्व पद से मुक्त कराने हेतु चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर स्वर्णभाण्ड चुरा लेता है। स्वर्णभाण्ड लेकर जब वह अपनी प्रेमिका के समीप पहुंचता है तो वह अपने चौरकम की प्रशंसा नाना प्रकार से करने लगता है। तब मदनिका कहती है कि तुमने मेरे लिए यह निन्दनीय कम क्यों किया। वह कहता है कि मैं निर्धनता से पीड़ित था परन्तु तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हें दासी पद से मुक्ति दिलाने के लिए मैंने आज रात साहसिक कार्य (चोरी) किया क्योंकि साहस में लक्ष्मी का निवास होता है– ''साहसे श्रीः प्रतिवसति''

महाकवि शूद्रक का यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है क्योंकि जो पुरुष भाग्य का तिरस्कार करके अपनी शक्ति के अनुसार साहस करता है उसकी सहचारिणी लक्ष्मी हो जाती है।

3. रिक्तं पुरुष स्त्रियः परिभवन्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब शर्विलक अपनी प्रेमिका मदनिका (वसन्तसेना की क्रीतदासी) को दासी पद से मुक्त कराने के लिए चोरी करता है। वह वसन्तसेना के ही प्रेम चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर चोरी करता है। यह सब कार्य वह मदनिका से अत्यधिक प्रेम करने के कारण करता है। परन्तु मदनिका को उसका चोरी करना अच्छा नही लगता। इस कारण शर्विलक वेश्याओं की बुराई करते हुए कहता है कि स्त्रियों और लक्ष्मी पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि ये अविश्वसनीय होती हैं ये तो अपने प्रेमी (अनुरागी) को भो अपमानित कर देती हैं। इसलिए जो स्त्री (वेश्या) स्वयं जिस प्रेमी से प्रेम करे उसे से पुरुष को प्रेम करना चाहिए अन्य से नहीं।

4. वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब वसन्तसेना की क्रीतदासी मदनिका का प्रेमी उसको दासीत्व कार्य से मुक्ति दिलाने के एिल चोरी करके धन लाता है तथा अपनी प्रेमिका को अपने चौर कम के विषय में बताता है। परन्तु मदनिका को उसका चोरी करना सहीं नहीं लगता। इस बात से रूष्ट होकर वह कहता है वेश्याओं से प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि वेश्याओं के सारे क्रिया कलपाप धन के लिए होते हैं। ये धन के लिए ही हंसती है और रोती हैं। पुरुष को अपने उपर विश्वास भो दिला देती हैं परन्तु स्वयं पुरुषा पर विश्वास नहीं करती हैं। अतएव उत्तमकुल एवं स्वभाव के व्यक्तियों को वेश्याओं का परित्याग श्मशानस्थल पर लगे हुए पुष्पों के समान कर देना चाहिए अतः सत्य ही कहा गया है कि– ''वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः''

5. न चन्द्रादातपो भवति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब शर्विलक अपने चौर्य व्यवसाय की चर्चा करता हुआ मदनिका को छुड़वाने के लिए वसन्तसेना के घर की ओर चल पड़ता है। उधर वसन्तसेना चारुदत्त का चित्र को अपने शयनकक्ष में रखने के लिए मदनिका को भजती है। इसी समय शर्विलक वहाँ पहुंचता है तथा शंकित होता हुआ चुराए गए आभ्षण मदनिका को दे देता है। आभ्षणों को देखकर मदनिका आश्चर्य में पड़ जाती है। जब वह पूछती है कि ये गहने कहाँ स लाए तब शर्विलक उन गहनों को चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर लाने की बात बताता है। वह उन आभ्षणों को भो पहचान लेती है कि ये आभ्षण तो वसन्तसेना के ही हैं जो उसने चारुदत्त के घर न्यास के रूप में रखे थे। मदनिका शर्विलक से कहती है तुमने यह अनुचित कार्य किया है तुम इन्हें चारुदत्त को ही लौटा दो। तब वह कहता है यदि चारुदत्त मेरी शिकायत न्यायालय में कर दे तब क्या होगा। मदनिका कहती है कि ऐसा हो ही नहीं सकता, चारुदत्त तो अत्यधिक उदार, सज्जन, व दयालु है, जिस प्रकार चन्द्रमा से शीतल किरणें ही निकलती हे तेज धूप नहीं उसी प्रकार चारुदत्त की उदारता ही दिखायेंगे। अतः सत्य ही कहा है कि– ''न चन्द्रातपो भवति''

6. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः

जब शर्विलक मदनिका को मुक्त कराने के लिए चोरी करके उसके पास आता है तब वह बताता है कि उसने चारुदत्त के घर से गहने चुराए हैं। मदनिका उसके इस कार्य से दुखी हो जातो है। वह कहती है कि इन्हें चारुदत्त को ही लौटा दो वैसे भो ये गहने तो वसन्तसेना ने ही चारुदत्त के घर धरोहर के रूप में रखवाए थे। वह कहता है कि यदि मैं इन्हें लौटा दूंगा तो यह कार्य चोरों की नीतियों के विरूद्ध होगा अतः तुम अन्य उपाय बताओ। वह एक आदर्श प्रेमिका की भांति बताती है कि तुम चारुदत्त का ही सम्बन्धी बनकर इन आभ्षणों को वसन्तसेना को सौंप दो। ऐसा करने से तुम चोर भो नहीं रहोगे, आर्य चारुदत्त भो उण (धरोहर वापस करने वाले) हो जाएंगे तथा वसन्तसेना को भो अपने आभ्षण मिल जाएंगे। ऐसा सुनकर शर्विलक कहता है कि मैंने तुमसे सूझबूझ प्राप्त करती है, मैं वही करूंगा जैसा तुमने कहा है। जब वह वसन्तसेना के समीप पहुंचता है तो सारे आभ्षण सौंप देता है। वसन्तसेना भो वधू के रूप में रूप में मदनिका को सौंपती है। यह सब घटित होने पर शर्विलक म नही मन चारुदत्त के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ होकर कहता ह कि आर्य चारुदत्त तुम धन्य हो। इसीलिए लोगों को सदैव गुणों की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए क्योंकि गुणवान् निर्धन व्यक्ति भो गुणहीन धनी लोगों से श्रेष्ठ होता है। अतएव सदैव पुरूष को गुणों के कारण कोई भो वस्तु अप्राप्य नहीं होती है।

जैसे चन्द्रमा गुणों के प्रकष से ही शिवजी (जो स्वयं सर्वोपरि हैं) के मस्तक पर विराजमान है। अतः महाकवि शूद्रक का कथन उचित एवं श्रेष्ठ है– ''गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः''।

22.6 षष्ठ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. बलवता सह को विरोधः ?
2. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने
3. भोतामभय प्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।

   यदि भवति, भवतु नाशस्तथापि च लोकगुण एव।।

22.6.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. बलवता सह को विरोधः ?

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब उज्जयिनी नगरी का राजापालक किसी सिद्ध पुरूष की भविष्यवाणी को सुनकर घबरा जाता है। यह भविष्यवाणी इस प्रकार थी कि इस नगरी का राजा गोपालक आर्यक बनेगा। ऐसा सुनकर पालक ने भयभोत होकर आर्यक को बिना किसी अपराध के कारागार में बन्द करवा दिया। उसका मित्र शर्विलक

उसे प्रयास करके जेल से बाहर निकाल लेता है। आर्यक अपने मित्र के प्रति कृतज्ञ होता हुआ कहता है कि यदि मेरे भाग्य में राज्य प्राप्ति है तो इसमें मेरा क्या अपराध है जिसके कारण राजापालक ने मुझे जंगली हाथी के समान बन्धन में डाल दिया। यद्यपि भाग्यवाली सिद्धि (राज्यादिप्राप्ति) टाली नहीं जा सकती फिर भो राजा से वैर करना उचित नहीं है क्योंकि बलशाली के साथ क्या विरोध– ''बलवता सह को विरोधः'' सत्य ही कहा गया है क्योंकि बलवान् व्यक्ति के साथ विरोध नहीं रखना चाहिए।

2. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब कारागार से बन्धन तुड़वाकर भागा हुआ गोपालक आर्यक आत्मरक्षार्थ चारुदत्त की वाटिका में प्रवेश करता है, वर्धमानक चारुदत्त की गाड़ी पक्षद्वार में खड़ी कर देता है। आर्यक उसमें छिपकर बैठ जाता है। वर्धमानक यह समझता है कि चारुदत्त के बुलावे पर उसकी प्रेमिका वसन्तसेना आकर बैठ गई है। अतः वह गाडी लेकर पुष्कररण्डक जीर्णोद्यान की ओर चल पड़ता है। उसी समय राजा के सेनाधिकारी वीरक और चन्दनक वर्धमानक से गाड़ी रोकने को कहते हैं तथा वीरक और चन्दनक में वाद–विवाद होता है। चन्दनक कहता है कि राजा के प्रधान सेनापति एवं राजा के विश्वासपात्र भो हो अतः तुम देखों कि गाड़ी म कौन बैठा है, मैंने इन दोनों बैलों को पकड़ लिया है। वीरक कहता है कि तुम भो राजा के विश्वस्त सेनापति हो अतः तुम्हीं देखों, जब चेट गाड़ी का जुआ उपर उठाता है तब आर्यक मन में कता है कि ये राजा के सिपाही मुझे देखेंगे, मैं तो इस समय बिना शस्त्र के हूं। अतः मैं इस समय भोमसेन के समान बाहु को शस्त्र बनाकर मृत्यु का वरण करूंगा क्योंकि बन्धन में पड़े रहने की अपेक्षा लड़ते हुए मर जाना ही श्रेष्ठ है अतः यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि ''वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने''।

3. भीतामभय प्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।
यदि भवति भवत् नाशस्तथापि च लोके गुण एव।।

जब राजा के सेनाधिकारी वीरक और चन्दनक वर्धमानक से गाड़ी रोकने को कहते हैं उसका वर्णन प्रस्तुत सूक्ति में करते हुए महाकवि शूद्रक कहते हैं कि परस्पर वाद–विवाद के पश्चात् जब चन्दनक गाड़ी में देखता है तो उसके भोतर कारागृह से भागे हुए आर्यक को देखता है। आर्यक उससे अभयदान मांगता है। चन्दनक उसे अभयदान दे देता है क्योंकि यदि कोई शरणागत की रक्षा न करके अपना स्वार्थ देखता है तो वह समाज में सर्वत्र निन्दित ही होता है। आर्यक को अपनी शरण में लेकर चन्दनक सोचता है कि भयभोत को शरण देने के कारण कभो–कभो अपने से बलशाली और सम्पन्न के साथ शत्रुता हो जाती है। शत्रुता होने पर मृत्यु की भो संभावना हो जाती है। फिर भो वह व्यक्ति संसार में प्रतिष्ठित होता है। अतः परोपकारी व्यक्ति द्वारा भयभोत व्यक्ति को अभय दान देना श्रेष्ठ कार्य है।

22.7 सप्तम अंक की प्रमुख स्क्तियाँ

1. न कालमपेक्षते स्नेहः
2. स्वात्मापि विस्मर्यते

22.7.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. न कालमपेक्षते स्नेहः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्योंकि चारुदत्त ने अपनी प्रेमिका को मिलने के लिए पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में बुलवाया है। वसन्तसेना को आने में विलम्ब होता देख दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं जब गाड़ी आ जाती है तब चारुदत्त चाहता है कि वसन्तसेना शीघ्र ही गाड़ी से

उतर कर उसके सम्मुख आ जाए क्योंकि– ''नकालमपेक्षते स्नेहः'' अर्थात् प्रेम समय का विलम्ब नहीं चाहता है। सही ही कहा गय है प्रेमी नायक–नायिका यदि परस्पर मिलना चाहते हैं तो प्रतीक्षा का अल्प समय भो उनको अधिक लगने लगता है।

2. स्वात्मापि विस्मर्यते

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना की गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। गाड़ी के आने पर विदूषक उसमें छिपकर बैठे हुए गोपालक आर्यक को देखता है और डर जाता है। तब चारुदत्त स्वयं चढ़कर देखता है तथा उसमें बैठे हुए सुन्दर रूपवाले हथकड़ी और बेड़ियों से बंधे हुए युवक (आर्यक) को देखकर उसका परिचय पूछता है। अपना परिचय देते हुआ (आर्यक) बताता है कि सिद्ध पुरूष की भविष्यवाणी (भविष्य में आर्यक राजा बनेगा) सुनकर राजा पालक ने उसे बेड़ियों में जकड़कर कारागार में डाल दिया था। मित्र शर्विलक की सहायता से वह कारागार से भाग तो आया पर राजा के सिपाहियों के डर से इस गाड़ी में छिपकर बैठ गया। चारुदत्त उसे अभयदान देते हुए कहता है कि चाहे मेरे प्राण भो चले जाएं परन्तु शरण में आए हुए तुम्हारी मैं जीवनरक्षा अवश्य करूंगा। ऐसा कहकर चारुदत्त उसे गाड़ी से ही जाने को कहता है जिससे कोई भो राजपुरूष उसे पकड़ नहीं पाए। उसकी कुशलता की कामना करता हुआ चारुदत्त कहता है कि आप अपने बन्धुओं के समीप जाइए। वह (आर्यक) कहता है कि मैंने तो अपना बन्धु पा लिया। ऐसा सुनकर चारुदत्त ने कहा कि अन्य प्रसंगों में भो मुझे स्मरण करना। पुनः आर्यक कहता है कि– ''स्वात्मापि विस्मर्यते'' अर्थात् क्या अपनी आत्मा को कोई भ्ला सकता है। भाव यह है कि जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर निर्जीव है उसी प्रकार आपको भलाकर मेरा भो कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।

22.8 अष्टम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्
2. मूखैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा
3. हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता

22.8.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब बौद्ध भिक्षु लोगों को सावधान करता हुआ कहता है कि तुम लोग अपने अज्ञान को दूर करो। संयम रूपी धन को संचय करो। अतः भोजनादि भो उतना लो जितना जीवन जीने के लिए आवश्यक है। ध्यानादि क्रिया से सदैव जागते रहो क्योंकि चंचल इन्द्रियाँ चोर के समान संचित धर्म को भो चुरा लेती हैं। अतएव इन्द्रियनिग्रह पर ध्यान दो। महाकवि शूद्रक ने उचित ही कहा है– ''विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्'' अर्थात् कष्टकारक इन्द्रियरूपी चोर बहुत समय से सचित धर्म को चुरा लेते हैं।

2. मूखैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब बौद्ध भिक्षु उद्यान में नागरिकों को धार्मिक उपदेश देता है, उसी समय राजा पालक का श्याल (साला) शकार एवं विट उपस्थित होते हैं। शकार बौद्ध भिक्षु को डांटता पीटता भो है तथा कहता है कि जिस पुष्करिणी में मैं भो स्नान नहीं करता उसी में तुमने अपने वस्त्र धो डाले। तब विट कहता है कि यह सम्भवतः कुछ दिनों पूर्व ही संन्यासी बना है अतः इसे छोड़ दीजिए। शकार फिर भो क्रोधित ही रहता है तथा कहता है कि यह पानी को गंदा न करे, इसीलिए यह इस प्रकार से कीचड़ को फेंके जिससे पानी गन्दा न हो अथवा पानी को इकट्ठा कर कीचड़ में फेंके। शकार की मूर्खता भरी बातों को सुनकर विट कहता है कि लोकविरूद्ध मनवाले चेष्टाओं से पत्थर के टुकड़े से समान (मोटे या बेकार) शरीर वाले मांसमय पेड़ के रूपी मूर्खों के भार से यह पृथ्वी दबी हुई है। ऐसे व्यक्ति को कितना भो समझा दिया जाये ये समझना ही नहीं चाहते अतः कवि ने सत्य ही कहा है– ''मूखैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा'' यह पृथ्वी मूर्खों के भार से दबी हुई है।

3. हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब शकार पुष्पकरण्डक उद्यान में बैठकर वसन्तसेना को याद करता है तबा अपनी गाड़ी की प्रतीक्षा करता है तभो उसे स्थावरक चेट दिखाई देता है तथा बताता है कि गाडी आ गई है। गाड़ी आ जाने पर वह उस पर चढ़कर वसन्तसेना को देखता है और घबरा जाता है और विट को पकड़ लेता है। विट जब वसन्तसेना को देखता है तब दुखी होकर कहता है कि– हंसी शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उज्जवल नदी के किनारे पर लेटे हुए हंस को छोड़कर कौए के समीप आ गई है।

22.9 नवम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति
2. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्

22.9.1 सक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब शकार वसन्तसेना की हत्या करके अपना अपराध चारुदत्त के उपर लगवाना चाहता है। अपनी इस योजना में वह सफल भो हो जाता है। वह न्यायालय में कहता है कि उसने अपने पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में एक मरी हुई स्त्री का शरीर देखा है। वह स्त्री वसन्तसेना है। किसी ने धन के लोभ में आकर उसकी हत्या कर दी। न्यायाधिकारी यह ज्ञात करने के लिए कि वसन्तसेना किसके पास गई थी, उसके माता को बुलाते हैं। उसकी माता आकर बताती है कि वह अपने मित्र चारुदत्त के घर पर अभिसार करने गई है। यह सुनकर न्यायाधिकारी चारुदत्त को बुलाते हैं। जब न्यायालय के कमचारियों के साथ चारुदत्त आता है तो उसे मार्ग में अनेक अपशकुन दिखाई पड़ते हैं। न्यायालय में पूछे जाने पर वह बताता है कि वसन्तसेना तो अपने घर गई। इसी बीच वीरक आकर बता देता है कि चारुदत्त की गाड़ी में बैठकर वसन्तसेना जीर्णोद्यान की ओर जा रही थी। न्यायाधिकारी उससे कहते हैं कि उद्यान जाकर पता लगाओं कि क्या वहाँ पर कोई स्त्री मरी हुई पड़ी है। वह पता लगाकर बता देता है कि वहाँ एक स्त्री का मरा हुआ शरीर पड़ा है। यह सुनकर चारुदत्त अपने मन में सोचता है कि जिस प्रकार पुष्प के पहले विकास खिलने के समय) के समय में ही उसके रस का पालन करने के लिए भौंरे उस पर टूट पड़ते हैं उसी प्रकार मनुष्य की विपत्ति के समय छोटे–छोटे दोष भो बड़े से बड़ा अनिष्ट कर डालते हैं। अतः सत्य कहा गया है– ''छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।''

2. मूले छिन्ने कुतः पापदस्य पालनम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राजा का साला शकार उद्यान में वसन्तसेना की हत्या कर देता है तथा वह अभियोग चारुदत्त पर लगाकर प्रस्तुत करता है। वह न्यायाधीशों को बताता है कि चारुदत्त ने उद्यान में जाकर वसन्तसेना की हत्या कर दी। जब चारुदत्त से पूछा जाता है तब वह सत्य बोलता है कि वह इस विषय में कुछ नहीं जानता है। परन्तु शकार की धूर्तता के कारण प्रमाण भो चारुदत्त को अपराधी सूचित करते हैं। अतः चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया जाता है। इस पर दुखी होकर वह कहता है कि राजा पालक बिना विचारे ही कार्य करता है। इसीलिए इसके शासन में अनेक लोग अकारण ही मारे जा रहे हैं। इसलिए वह अपने मित्र मैत्रेय को बुलाकर उससे अपने पुत्र रोहसेन के पालन का भार सौंपकर स्वयं वध्यस्थल पर जाता है। मैत्रेय कहता है कि मैं तुम्हारे वचन का पूर्णतः पालन करूंगा परन्तु वृक्ष की मूल (जड़) कट जाने पर उसका किस प्रकार पालन हो सकेगा।

22.10 दशम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिंल भते
2. सर्वत्रार्जवं शोभते

22.10.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते।

जब शकार की धूर्तता के कारण मिथ्यारोपवश चारुदत्त का मृत्युदण्ड मिलता है। तब दो चाण्डाल चारुदत्त को मृत्युदण्ड की वेशभ्षा पहनाकर वध्यस्थल पर ले जाते हैं उसी समय का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि उस समय चाण्डाल कुल गोत्र का परिचय देते हुए उसके अपराध और मृत्युदण्ड की घोषणा करते हैं जिसे सुनकर चारुदत्त दुखी होता है। उसी समय विदूषक भो चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को लेकर आता है। रोहसेन पिता की अवस्था को देखकर रोता है। तब चारुदत्त भो दुखी होता है। जब चाण्डाल यह पूछता है कि क्या तुम डर रहे हो। तब चारुदत्त ने कहा मैं मृत्यु से नहीं डरता। ऐसा सुनकर चाण्डाल कहता है कि जब आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र भो विपत्ति को प्राप्त करते हैं तब मृत्यु से डरने वाले मनुष्यों की क्या बात है। क्योंकि इस संसार में जीव व मरण का क्रम चलता रहता है। अतः हे चारुदत्त तुम शोक मत करो।

2. **सर्वत्रार्जवं शोभते**

जब राजा पालक को मारकर आर्यक राजा बनता है वह सभो प्रजाजन के प्रति उचित व्यवहार व न्याय करता है। चारुदत्त को क्षमा दान देकर शकार को चारुदत्त पर मिथ्याभियोग लगाने के कारण मृत्युदण्ड का आदेश देता है परन्तु चारुदत्त के कहने पर राजा उसे (शकार को) क्षमा कर देता है। उसी समय शर्विलक स्वयं क द्वारा की चारुदत्त के घर के घर स्वर्णाभ्षणों की चोरी का स्मरण कर सोचता है कि चारुदत्त तो स्वभाव से अति सरल व उदार है। वे मुझे क्षमा अवश्य कर देंगे क्योंकि– ''सर्वत्रार्जवं शोभते''। जो व्यक्ति स्वभाव से सरल होता है वह सदैव शोभायुक्त होता है।

22.11 पारिभाषिक शब्दावली

आस्पद	निवास स्थान
मुमूर्षु	मरने वाला
कलत्र	स्त्री
न्यास	धरोहर
शर्वरी	रात्रि
पिशुनः	दुष्ट
आर्जवं	सरलता
वरम्	ठीक है
व्यायच्छतः	लड़ते हुए

22.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या कीजिए–

1. भाग्यक्रमेण धनानि भवन्ति यान्ति।
2. बहुदोषा हि शर्वरी।
3. सत्कार धनः खलु सज्जनः।
4. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता
5. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न ग्रहीतस्य बन्धने।
6. न कालमपेक्षते स्नेहः
7. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्
8. मूर्खैभाराक्रान्ता वसुन्धरा
9. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति
10. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्।
11. सर्वत्रार्जवं शोभते।
12. साहसे श्रीः प्रतिवसति।

बोध प्रश्नोत्तर

1. इकाई 22.2.2 में देखिए
2. इकाई 22.2.2 में देखिए
3. इकाई 22.3.2 में देखिए

4. इकाई 22.4.2 में देखिए
5. इकाई 22.6.2 में देखिए
6. इकाई 22.7.2 में देखिए
7. इकाई 22.8.2 में देखिए
8. इकाई 22.8.2 में देखिए
9. इकाई 22.9.2 में देखिए
10. इकाई 22.9.2 में देखिए
11. इकाई 22.10.2 में देखिए
12. इकाई 22.5.2 में देखिए

22.13 सारांश

इस इकाई में मृच्छकटिकम नाटक की कल्याणकारग सूक्तियों की व्याख्या की गई है । ये सूक्तियां न केवल सामाजिक अपितु आर्थिक राजनैतिक महत्व की भी है । इस सूक्तियों में निति, धर्म, चरित्र, दरिद्रता आदि का सम्यक समावेश हुआ है ।

22.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृच्छकटिकम् – डॉ जयशंकर लाल त्रिपाटी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 1993.
2. मृच्छकटिकम् – डॉ श्रीनिवास शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
3. शुद्रक का मृच्छकटिकम् – डॉ विश्वनाथ शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1998.
4. मृच्छकटिकम् – शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन – डॉ शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1998.